श्री महावीराय नमः

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

जय गुरु हीरा — जय गुरु मान

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैन धर्म विशारद

छठी कक्षा

अ. भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर -342 001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490 फैक्स : 0291-2630490, 2636763

सूत्र विभाग-

दशवैकालिक सूत्र

प्रथम अध्याय

दुमपुप्फिया (द्रुम पुष्पिका)

मूल- धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।1।।

अन्वयार्थ- धम्मो- दुर्गति में गिरते हुए जीव को बचाने वाला श्रुत-चारित्र रूप धर्म। **मंगलमुक्किट्ठं-** उत्कृष्ट मंगल है। **अहिंसा संजमो तवो-** वह धर्म अहिंसा, संयम और तप रूप है। **देवा वि-** देवता भी। **तं-** उसको। **नमंसंति-** नमस्कार करते हैं। **जस्स-** जिसका। **धम्मे-** धर्म में। **सया-** सदा। **मणो-** मन लगा रहता है।

भावार्थ- अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म संसार के सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है। ऐसे धर्म में जिसका मन सदा रमण करता रहता है, उसको चार जाति के भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवता भी नमस्कार करते हैं।

श्रमणधर्मः भिक्षाचरी और मधुकरी-वृत्ति :

मूल- जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं ।।2।।

अन्वयार्थ- जहा- जैसे। **दुमस्स-** वृक्ष के। **पुप्फेसु-** फूलों पर। **भमरो-** भँवरा। **रसं-** रस को। **आवियइ-** मर्यादा से पीता है। **य पुप्फं-** और फूल को। **न किलामेइ-** पीड़ा उत्पन्न नहीं करता है। **य-** और। **सो-** वह। **अप्पयं-** अपने आपको। **पीणेइ-** तृप्त कर लेता है।

भावार्थ- जैसे भँवरा फूलों पर प्राकृतिक मर्यादा से रसपान करके अपना पोषण कर लेता है और फूलों को पीड़ा उत्पन्न नहीं होने देता है। इसी प्रकार साधु अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करता है, जिससे कि उसका भी अच्छी तरह निर्वाह हो जाय और दूसरों के लिए भी अपने आहार में से थोड़ा सा दे देना कष्टदायक न हो।

मूल- एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाण - भत्तेसणा रया ।।3।।

अन्वयार्थ- एमे ए- ऐसे ये। **समणा-** श्रमण तपस्वी। **मुत्ता जे-** बहिरंग और अंतरंग परिग्रह से जो मुक्त हैं। **लोए-** लोक में। **साहुणो-** साधु। **संति-** हैं। **पुप्फेसु-** फूलों पर। **विहंगमा व-** भँवरे के समान वे। **दाण भत्तेसणा-** दाता द्वारा दिये गये निर्दोष प्रासुक आहार पानी की एषणा में। **रया-** रत रहते हैं।

भावार्थ- जो लोक में आरम्भादि से मुक्त साधु होते हैं, वे फूलों पर भँवरे के समान, दाता द्वारा दिये गये निर्दोष आहार की गवेषणा में रत रहते हैं।

उत्थानिका :

इसी को लक्ष्य में रखकर शिष्य गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं-

मूल– वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ।।4।।

अन्वयार्थ– वयं च- और हम। **वित्तिं-** ऐसी वृत्ति। **लब्भामो-** प्राप्त करेंगे, जिसमें छोटा-बड़ा। **न य कोई उवहम्मइ-** कोई भी जीव कष्ट प्राप्त नहीं करे। **पुप्फेसु-** फूलों पर। **भमरा-** भँवरे। **जहा-** जैसे। **रीयंते-** जाते हैं। **अहागडेसु-** वैसे ही हम गृहस्थों के द्वारा, उनके निज के लिये बनाये गये भोजन में से थोड़ा-थोड़ा लेकर विचरण करते रहेंगे।

भावार्थ– शिष्य गुरुदेव के चरणों में यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार भँवरा फूलों से रस लेने में किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है। हम भी ऐसी रीति अपनायेंगे, जिससे कि किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। फूलों पर भँवरों की तरह गृहस्थ के यहाँ उनके उपभोग के लिये बनाये आहार में से ही थोड़ा-थोड़ा हम ग्रहण करेंगे।

श्रमणधर्म–पालक भिक्षाजीवी साधुओं के गुण :

मूल– महुगार समाबुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ।। त्ति बेमि।।5।।

अन्वयार्थ– महुगार समा- भँवरे के समान। **जे बुद्धा-** जो ज्ञानवान्। **दंता-** जितेन्द्रिय तथा। **अणिस्सिया-** कुल जाति के प्रतिबंध से रहित वे। **भवंति-** होते हैं। **नाणापिंडरया-** अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा प्रासुक आहार लेते हैं। **तेण-** इसलिये वे। **साहुणो-** साधु। **वुच्चंति-** कहलाते हैं। **त्ति बेमि-** ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ– जैन श्रमण भ्रमरवृत्ति वाले होते हैं। तत्त्वों के ज्ञाता व भ्रमर के समान किसी एक कुल, जाति या व्यक्ति के आश्रित नहीं होकर अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा रूखा-सूखा, नीरस या तुच्छ नाना प्रकार का निर्दोष व प्रासुक आहार-पानी लेकर सन्तुष्ट और जितेन्द्रिय बनकर रहते हैं, इसलिये वे साधु कहलाते हैं। ऐसा मैं कहता हूँ।

।। प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

द्वितीय अध्ययन

सामण्णपुव्वयं (श्रामण्यपूर्वक)

कामना निवारण के अभाव में श्रामण्यपालन असम्भव :

मूल– कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसंगओ ।।1।।

अन्वयार्थ– सामण्णं– श्रमण धर्म का पालन। **कहं नु–** वह कैसे। **कुज्जा–** करेगा। **जो–** जो। **कामे–** इच्छाओं (कामनाओं) का। **न निवारए–** निवारण नहीं करता है। **पए पए–** पग-पग पर। **विसीयंतो–** खेद पाता हुआ वह। **संकप्पस्स–** संकल्प विकल्प के। **वसंगओ–** आधीन होता है।

भावार्थ– जो साधक कामनाओं का निवारण नहीं कर सकता, वह श्रमण धर्म का पालन कैसे करेगा? क्योंकि कामनाओं के आधीन पुरुष संकल्प विकल्प के वशीभूत होकर, पग-पग पर खेद प्राप्त करता है। अर्थात् कामनाओं पर विजय प्राप्त किये बिना श्रमण धर्म का यथावत् पालन नहीं किया जा सकता है।

अत्यागी और त्यागी के लक्षण :

मूल– वत्थ - गंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ।।2।।

अन्वयार्थ– वत्थ गन्धमलंकारं– वस्त्र, कपूर आदि गंध एवं अलंकार। **इत्थीओ–** स्त्रियाँ। **य–** और। **सयणाणि–** पलंग आदि शय्याओं को। **अच्छंदा–** असमर्थता, परवशता से। **जे–** जो। **न भुंजंति–** नही भोगते। **से–** वे। **चाइ त्ति–** त्यागी हैं ऐसा। **न वुच्चइ–** नहीं कहलाते।

भावार्थ– वस्त्र, गन्ध, माला, आभूषण और संसार की विविध रमणीय भोग सामग्री का पराधीनता या रोगादि के भय से चाहते हुए भी जो भोग नहीं कर पाते, वस्तुतः वे त्यागी नहीं कहलाते हैं।

मूल– जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठी कुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ।।3।।

अन्वयार्थ– जे– जो। **कंते–** कान्त, मनोहर। **य–** और। **पिए–** प्रिय। **भोए–** भोगों को। **लद्धे वि–** मिलने पर भी। **पिट्ठी कुव्वइ–** पीठ करता है, तथा। **साहीणे–** स्वाधीन यानी प्राप्त। **चयइ भोए–** भोगों को छोड़ता है। **से हु–** वह ही। **चाइ त्ति–** त्यागी। **वुच्चइ–** कहलाता है।

भावार्थ– सुन्दर और रुचिकर भोग-सामग्री के मिलने पर भी उससे पीठ करता है, यानी उसे ठुकरा देता है और प्राप्त भोगों को स्वेच्छा से छोड़ देता है, वस्तुतः वह ही त्यागी कहलाता है।

काम–भोग निवारण के उपाय :

मूल– समाइ पेहाइ परिव्वयंतो,
सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नो वि अहं पि तीसे,
इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।4।।

अन्वयार्थ– समाइ– समाधि की। **पेहाइ–** दृष्टि से। **परिव्वयंतो–** विचरते हुए। **सिया–** कदाचित् साधु का। **मणो–** मन। **बहिद्धा–** संयम से बाहर। **निस्सरई–** निकल जाय। (प्रश्न) तब वह क्या करे? (उत्तर) **सा–** वह। **महं–** मेरी। **न–** नहीं और। **अहं पि–** मैं भी। **तीसे–** उसका। **नो वि–** नहीं हूँ। **इच्चेव–** इस प्रकार सोचकर। **ताओ रागं–** उस स्त्री पर रहे हुए रागभाव को। **विणएज्ज–** हटा ले।

भावार्थ– राग–द्वेष रहित होकर शान्त व सम दृष्टि से साधना मार्ग पर चलते हुए भी कदाचित् कभी किसी साधक का मन संयम से बाहर निकल जाय, तो आत्मार्थी ऐसा सोचे कि वह मेरी नहीं और मैं उसका नहीं।

मूल– आयावयाहि चय सोगमल्लं,
कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं,
एवं सुही होहिसि संपराए ।।5।।

अन्वयार्थ– आयावयाहि– धूप एवं सर्दी की आतापना ले। **चय सोगमल्लं–** सुकुमारपन का परित्याग कर। **कामे–** कामवासना या कामनाओं को। **कमाहि–** दूर कर तब। **दुक्खं–** तेरा दुःख। **कमियं खु–** दूर हुआ, समझ। **दोसं–** द्वेष का। **छिंदाहि–** छेदन कर। **रागं–** राग को। **विणएज्ज–** दूर हटा। **एवं–** ऐसा करने से। **संपराए–** संसार में। **सुही–** सुखी। **होहिसि–** हो जाएगा।

भावार्थ– शीत और गर्मी की आतापना लेते हुए सुकुमारता का परित्याग करो एवं कामनाओं का निवारण करो तो दुःख दूर हुआ समझो। द्वेष का छेदन करो और राग को अलग करो, ऐसा करने से संसार में सुखी हो जाओगे।

काम पराजित रथनेमि को संयम में स्थिरता का, राजीमती का उपदेश :

मूल– पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ।।6।।

अन्वयार्थ– अगंधणे कुले– अगन्धन कुल में। **जाया–** उत्पन्न हुए सर्प। **जलियं–** जलती हुई। **जोइं–** आग जो। **धूमकेउं–** धूम के ध्वजा वाली और। **दुरासयं–** दुःख से सहन करने योग्य विकराल आग में। **पक्खंदे–** कूद जाते हैं किन्तु। **वंतयं–** वमन किये विष को। **भोत्तुं–** भोगने, वापस लेने की। **नेच्छंति–** इच्छा नहीं करते।

भावार्थ– अगन्धन कुल में जन्मे हुए सर्प विकराल जलती हुई अग्नि में कूदकर मर जाना मंजूर करते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष को फिर से चूसने-खींचने की इच्छा नहीं करते, स्वीकार नहीं करते। साधक को भी अपनी प्रतिज्ञा पर इसी प्रकार की दृढ़ता से चलना चाहिए।

मूल– धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीविय-कारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।।7।।

अन्वयार्थ– धिरत्थु– धिक्कार है। **अजसोकामी–** हे अपयश के कामी। (असंयम की कामना वाले)। **ते–** तुमको। **जो–** जो। **तं–** तुम। **जीविय कारणा–** भोगी जीवन जीने के लिये। **वंतं–** छोड़े हुए भोगों को। **आवेउं–** फिर भोगना। **इच्छसि–** चाहते हो, इसकी अपेक्षा तो। **ते–** तुम्हारा। **मरणं–** मर जाना। **सेयं–** अच्छा। **भवे–** है।

भावार्थ– हे अपयश के कामी! तुझे धिक्कार है, जो तू त्यागे हुए पदार्थ को फिर भोगना चाहता है। इससे तो तुम्हारा संयम अवस्था में रहकर मरना श्रेयस्कर है, क्योंकि प्रण (प्रतिज्ञा) का महत्त्व प्राणों से भी अधिक है।

मूल– अहं च भोगरायस्स, तं चऽसि अंधगवण्हिणो ।
मा कुले गंधणा होमो, संजमं निहुओ चर ।।8।।

अन्वयार्थ– अहं च– मैं तो। **भोगरायस्स–** भोजराज उग्रसेन की पुत्री हूँ। **तं च–** और तुम। **अन्धगवण्हिणो–** अन्धकवृष्णि समुद्रविजय के पुत्र। **असि–** हो। **कुले–** अपने कुल में। **गंधणा–** गन्धनजाति के सर्प के समान। **मा होमो–** मत बनो। **संजमं–** संयम का। **निहुओ–** स्थिर-एकाग्र मन से। **चर–** आचरण करो, पालन करो।

भावार्थ– कुलाभिमान को जागृत करते हुए सती राजीमती कहती है– "रथनेमिजी! मैं भोजराज उग्रसेन की पूत्री हूँ और तुम महाराज समुद्र विजय के पुत्र हो। ऐसे उच्च कुल में जन्म पाकर, हम गन्धनकुल के नाग की तरह नहीं बनें, किन्तु मैं और तुम एकाग्रमन से संयम धर्म का आचरण कर, अपने कुल का गौरव बढ़ाएँ।

मूल– जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठि-अप्पा भविस्ससि ।।9।।

अन्वयार्थ– जइ तं– यदि तू। **भावं–** चंचल भाव। **काहिसि–** करेगा तो। **जा जा–** जिन जिन। **नारिओ–** नारियों को। **दिच्छसि–** देखेगा, उससे। **वायाविद्धो–** तेज पवन से प्रेरित। **हडो व्व–** हड वृक्ष (पानी के वृक्ष विशेष) के समान। **अट्ठिअप्पा–** अस्थिर आत्मा। **भविस्ससि–** हो जाएगा।

भावार्थ– हे मुने! यदि तू जिन-जिन नारियों को देखेगा और उन पर विकारी भाव करेगा तो तू तेज हवा से कम्पित हड वृक्ष की तरह अस्थिर आत्मा वाला हो जाएगा।

राजीमती के सुभाषित का परिणाम :

मूल– तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं ।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ।।10।।

अन्वयार्थ– तीसे– उस। **संजयाए–** संयमशीला राजीमती के। **सो सुभासियं–** वे सुभाषित। **वयणं–** वचन। **सोच्चा–** सुनकर। **अंकुसेण–** अंकुश से। **जहा नागो–** जैसे हाथी वश में हो जाता है, वैसे ही रथनेमि भी। **धम्मे–** चारित्र धर्म में। **संपडिवाइओ–** पुनः स्थिर हो गये।

भावार्थ– उस संयमशीला राजीमती महासती के इन हृदयस्पर्शी, सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि का मन अंकुश के द्वारा वश हुए मत्त हाथी के समान, संयम धर्म में पुनः स्थिर हो गया।

समस्त साधकों के लिये प्रेरणा :

मूल– एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो।।11।। –त्ति बेमि।।

अन्वयार्थ– संबुद्धा पंडिया– सम्यक् बोध वाले पंडित। **पवियक्खणा–** विचक्षण साधक। **एवं–** इसी प्रकार। **करेंति–** अपनी आत्मा को स्थिर करते हैं। **भोगेसु–** काम-भोगों से। **विणियट्टंति–** निवृत्त होते हैं। **जहा–** जैसे। **से–** वह। **पुरिसुत्तमो–** पुरुषोत्तम रथनेमि। **त्ति बेमि–** ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ– सम्यक् बोध वाले विचक्षण पुरूष वे हैं जो मोहभाव के उदय से चंचल बनी चित्तवृत्तियों को ज्ञान के अंकुश से स्थिर कर लेते हैं। जैसे पुरुषोत्तम रथनेमि ने राजीमती के सुभाषित वचन सुनकर भोगों से पुनः अपने मन को मोड़ लिया था। ऐसा मैं कहता हूँ।

।। द्वितीय अध्ययन समाप्त ।।

जीवनोपयोगी शास्त्रीय गाथाएँ

1. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य ।।

उत्तरा.1/15

अर्थ– अपनी आत्मा का ही दमन (वश में करना, संयमित करना) करना चाहिये; क्योंकि आत्मा का दमन ही कठिन है। दमन की गयी आत्मा ही इस लोक तथा परलोक दोनों में सुखी होती है।

2. जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।।

उत्तरा.9/34

अर्थ– जो साधक दुर्जय (जहाँ विजय पाना दुष्कर हो) संग्राम में दस लाख सुभटों को जीतता है; उसकी अपेक्षा जो एक आत्मा को (विषय-कषायों में प्रवृत्त अपने-आपको) जीत लेता है, वश में कर लेता है, उस आत्मजयी की यह विजय ही उत्कृष्ट (परम) विजय है। अर्थात् वह परम विजेता कहलाता है।

3. अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुप्पट्ठिओ ।।

उत्तरा. 20/37

अर्थ– आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता और विकर्त्ता (भोक्ता) है। सत्प्रवृत्तियों में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्तियों में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

4. सुवण्ण-रूप्पस उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि,
इच्छा उ आगाससमा अणंतिया ।। उत्तरा. 9/48

अर्थ– कदाचित् सोने और चाँदी के कैलाशपर्वत के तुल्य असंख्य पर्वत मिल जाएँ, फिर भी लोभी मनुष्य की उनसे किंचित् भी तृप्ति नहीं होती है, क्योंकि (मनुष्य की) इच्छा आकाश के समान अनन्त हैं।

5. सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाणं परमं जाइ, घय-सित्तव्व पावए ।।

उत्तरा. 3/12

अर्थ– जो साधक ऋजुभूत (सरल) होता है, उसे शुद्धि प्राप्त होती है और जो शुद्ध होता है, उसमें धर्म ठहरता है। जिसमें धर्म ठहरता है, वह घृत से सींची हुई अग्नि की तरह परम निर्वाण (परम-शाश्वत शान्ति) को प्राप्त होता है।

6. सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दोग्गइं ।।

उत्तरा. 9/53

अर्थ– शब्दादि काम-भोग शल्य रूप हैं। ये कामादि विषय विष तुल्य हैं। ये काम आशीविष सर्प के समान हैं। काम-भोगों को चाहने वाले (किन्तु परिस्थितिवश) उनका सेवन न कर सकने वाले जीव भी दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

7. खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा,
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।। उत्तरा. 14/13

अर्थ– ये कामभोग (इन्द्रिय-विषय) क्षणमात्र के लिये सुखदायी होते हैं, किन्तु फिर चिरकाल तक दुःख देते हैं। अतः ये अधिक दुःख और अल्प (तुच्छ) सुख देते हैं। ये संसार से मुक्त होने में विपक्षभूत अर्थात् बाधक हैं और अनर्थों की खान हैं।

8. सव्व भूयप्पभूयस्स, संमं भूयाइं पासओ ।
पिहियासव्वस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ ।।

दशवै. 4/9

अर्थ– जो सब जीवों को अपने समान (आत्मवत्) समझता है और सभी जीवों को सम्यक् प्रकार से (समभाव से) देखता है, ऐसा जितेन्द्रिय आत्मा कर्मों के आने के आश्रव-द्वारों को रोक देता है, जिससे उसके पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता है।

9. जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ।।

दशवै. 8/36

अर्थ– जब तक वृद्धावस्था शरीर को पीड़ा नहीं देती-जीर्ण नहीं करती, व्याधियाँ तन में नहीं फैलतीं, श्रोत्र-चक्षु आदि इन्द्रियाँ जब तक क्षीण नहीं होतीं, तब तक सम्यग् श्रुत-चारित्र रूप धर्म का आचरण कर लेना चाहिये।

10. कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो ।
माया मित्ताणि णासेइ, लोहो सव्व विणासणो ।।

दशवै. 8/38

अर्थ– क्रोध प्रीति को नष्ट करता है। मान विनय गुण को नष्ट करने वाला है। माया मित्रता को समाप्त करती है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करने वाला है।

11. उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जव भावेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।

दशवै. 8/39

अर्थ– साधक क्रोध को उपशम अर्थात् क्षमा भाव से नष्ट करे। मार्दव (मृदुता) भाव से, विनम्रता से मान पर विजय प्राप्त करे। सरलता से माया (कपट) पर विजय पाए और लोभ को सन्तोष वृत्ति से जीते।

12. जो पुव्वरत्तावरत्त काले,
संपेहए अप्पगमप्पएणं ।
किं मे कडं, किं च मे किच्चसेसं,
कि सक्कणिज्जं ण समायरामि ।।

दशवै. द्वितीय चूलिका-गाथा-12

अर्थ– साधक रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में अपना आत्मालोचन एवं आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने-आपको सम्यक् प्रकार से देखे, सोचे कि मैंने क्या कार्य किया है, मेरे लिये क्या कार्य करना शेष है और वह कौनसा कार्य है जिसे मैं कर सकता हूँ, परन्तु प्रमादवश नहीं कर पाता हूँ।

13. एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं ।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया ।।

सूत्रकृतांग 1-4-85

अर्थ– यही ज्ञान पाने का सार है कि साधक किसी जीव की हिंसा न करे। अहिंसा के कारण सब जीवों पर समता रखना (उपलक्षण से सत्य आदि) यही अहिंसा का सिद्धान्त विशेष रूप से जानने योग्य है।

अंतगडदशांग सूत्र - एक परिचय

नाम और महत्त्व

अन्त, कृत और दशा इन तीन शब्दों से मिलकर इस शास्त्र का नामकरण हुआ है। 'अंतगडदसा' के नाम की सार्थकता स्वयं इसके अध्ययन से विदित हो जाती है। इस शास्त्र में केवल उन्हीं संत-सतियों के जीवन-परिचय हैं, जिन्होंने अपनी आयु के अन्तिम क्षणों में घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान-केवलदर्शन को प्राप्त किया तथा अन्तर्मुहूर्त्त में ही चार अघाति कर्मों का क्षय कर जन्म-जरा-मरण रूप भवचक्र का अन्त कर दिया अथवा अष्टविध कर्मों का अन्त कर जो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये। सदा के लिए संसार लीला का अन्त करने वाले 'अंतगड' जीवों की साधना-दशा का वर्णन करने से ही इसका 'अंतगडदसा' नाम रखा गया है।

इसके पठन-पाठन और मनन से हर भव्य जीव को आन्तरिक क्रिया की प्रेरणा मिलती है, अतः यह परम कल्याणकारी ग्रन्थ है। उपासकदशा में एक भव में मोक्ष जाने वाले श्रमणोपासकों का वर्णन है, किन्तु इस आठवें अंग 'अन्तकृत दशा' में उसी जन्म में सिद्ध गति प्राप्त करने वाले उत्तम श्रमणों का वर्णन है। अतः यह परम मंगलमय है और इसीलिये लोक जीवन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वर्णन शैली

ग्रन्थों की रोचकता को उनकी वर्णन शैली से भी आँकने की प्रथा है। अच्छी से अच्छी बातें भी अरोचक ढंग से कहने पर उतना असर नहीं डालती, जितना कि एक साधारण बात भी सुन्दर व व्यवस्थित ढंग से कहने पर श्रोता के चित्त को आकृष्ट कर लेती है। प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णन शैली भी व्यवस्थित है। इसमें प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यंतरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एवं परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण प्रीतिदान, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना और अन्तःक्रियास्थान का उल्लेख किया गया है।

'अंतगडदसा' में वर्णित साधक पात्रों के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान महावीर के शासन में विभिन्न जाति एवं श्रेणि के व्यक्तियों को साधना में समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ अनेक राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधना-पथ में चरण से चरण मिलाकर चल रहे हैं; दूसरी ओर वहीं कतिपय उपेक्षित वर्ग वाले और मनुष्यों की घात करने वाले तक भी ससम्मान इस साधना क्षेत्र में आकर समान रूप से आगे बढ़ रहे हैं। कर्मक्षय कर सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त होने में किसी को कोई रूकावट नहीं, बाधा नहीं, "हरि को भजे सो हरि को होई" वाली लौकिक उक्ति अक्षरशः चरितार्थ हुई है। कितनी समानता, समता और आत्मीयता भरी थी, उन सूत्रकारों के मन में। वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे बाल मुनि और गजसुकुमाल जैसे राजप्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र में उतरकर सिद्धि प्राप्त कर गये। शास्त्रकार की यह रचना शैली विश्व के मानव मात्र को कल्याण-साधन में पूर्णरूप से प्रेरित एवं उत्साहित करती है।

परिचय

समवायांग सूत्र में 'अंतगडदसा' का परिचय इस प्रकार मिलता है- अंतगडदसा में अन्तकृत आत्माओं के नगर, उद्यान, चैत्य, व्यंतरालय, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, लौकिक और पारलौकिक ऋद्धि, भोगपरित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतग्रहण, उपधान, तप, प्रतिमा, क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच और सत्य सहित 17 प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप-क्रिया, समिति-गुप्ति, अप्रमाद योग, उत्तम संयम, आप्त (सर्वज्ञ) पुरुषों के स्वाध्याय-ध्यान का लक्षण, चार प्रकार के कर्म क्षय करने पर केवलज्ञान की प्राप्ति, जिन्होंने संयम का पालन किया, पादपोपगमन संथारा किया और जहाँ जितने भक्त का छेदन करना था, वह करके अन्तकृत् मुनिवर अज्ञान रूप अन्धकार से मुक्त होकर सर्वश्रेष्ठ मुक्तिपद प्राप्त कर गये, ऐसे अन्यान्य वर्णन भी इसमें विस्तार के साथ कहे गये हैं।

अन्तकृतदशा सूत्र की परिमित वाचना एवं संख्येय अनुयोग द्वार हैं, यावत् संख्येय संग्रहणी हैं। अंग की अपेक्षा यह आठवाँ अंग है, इसके एक श्रुत स्कन्ध, दस अध्ययन और सात वर्ग हैं। दस उद्देशन काल और दस ही समुद्देशन काल हैं। (सम.पृ.251, हैदराबाद)

नन्दी सूत्र- गत परिचय से समवायांग के इस परिचय में यह विशेषता है कि यहाँ क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच आदि यति धर्म का स्वरूप बताने के साथ स्वाध्याय और ध्यान का लक्षण भी बताया गया है। सम्भव है आज का 'अंतकृद्दशा' कोई भिन्न वाचना का हो। इसमें स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध साधकों की कठोर साधना गायी गई है। महामुनि गजसुकुमाल के आत्मध्यान का भी वर्णन है। पर इसमें ध्यान की विशेष परिपाटी या लक्षण का पृथक् कोई उल्लेख नहीं मिलता। कदाचित् संक्षेपीकरण के समय देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने इसे कम कर दिया हो, अथवा प्राप्त वाचना में इसी प्रकार का पाठ हो।

अध्ययन और वर्ग का परिचय भी समवायांग सूत्र में भिन्न प्रकार से है। नन्दीकार जहाँ 'अंतगडदसा' का एक श्रुत स्कन्ध, आठ वर्ग और आठ ही उद्देशन काल बताते हैं, वहाँ समवायांग में एक श्रुत स्कन्ध, दश अध्याय तथा ७ वर्ग बतलाए हैं। आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी म.सा. ने दश अध्याय का एक वर्ग और सात वर्ग, यों आठ वर्ग लिखे हैं। पर उद्देशन काल दश कहे हैं, जबकि नन्दीसूत्र में आठ उद्देशन काल बतलाए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि समवायांग सूत्र में निर्दिष्ट 'अंतगडदसा' वर्तमान 'अंतगडदसा' से कोई भिन्न था। वर्तमान में उपलब्ध सूत्र ही नन्दी सूत्र में निर्दिष्ट अंतगडदसा है।

सेवा धर्म

जिस प्रकार श्रमण साधक के लिये समिति-गुप्ति का पालन करना प्रधान धर्म है, उसी प्रकार गृहस्थ श्रावक के लिये सेवा-धर्म प्रधान है। 'अंतगडदसा' सूत्र में वर्णन है कि श्रीकृष्ण श्रमण धर्म को श्रेष्ठ समझते हुए भी संसार-त्याग करने में समर्थ नहीं हुए। अतः उन्होंने सेवा-कार्य को ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाया। उन्होंने अपनी माता देवकी के पुत्र-पालन की भावना को पूर्ण कर मातृ-सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। श्रीकृष्ण अर्द्धभरत के स्वामी (राजा) थे। एक समय राजकीय ठाट-बाट के साथ भगवान् श्री अरिष्टनेमी के दर्शनार्थ जा रहे थे। मार्ग में एक वृद्ध पुरुष को देखा जो जरा से जर्जरित, क्लान्त व थका हुआ था। वह अपने घर के बाहर पड़े ईंटों के विशाल ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर में रख रहा था। वासुदेव श्रीकृष्ण ने उस पुरुष

के प्रति करुणार्द्र होकर उस पर अनुकम्पा की और उस ढेर में से एक ईंट स्वयं ने उठाई तथा उसके घर में रख दी। इससे प्रेरित हो उनके साथ के सैकड़ों पुरुषों ने एक-एक ईंट उठाकर सम्पूर्ण ढेर को घर में पहुँचा दिया। इससे समाज-सेवा का महत्त्व तो प्रकट होता ही है, साथ ही राजा के द्वारा प्रजा के प्रति वात्सल्य-सेवाभाव रूप कर्त्तव्य का भी बोध होता है। उन्होंने अपने लघु भ्राता श्री गजसुकुमाल का राज्याभिषेक कर भ्रातृ-प्रेम का भी उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं उन्होंने राज्य में उद्घोषणा कराई कि कोई भी व्यक्ति जो संयम धारण करना चाहता है, वह संयम ले। उसके आश्रित परिवार का भार उठाने का दायित्व राजा अपने पर लेता है। इससे उनका धर्म-वात्सल्य प्रकट होता है। इस प्रकार परिवार, समाज, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने सेवा धर्म के महत्त्व को प्रकट किया।

दर्शनाराधना

सेठ सुदर्शन ने सुना कि भगवान महावीर नगर के बाहर उद्यान में पधारे हैं तो सेठ सुदर्शन अर्जुन माली के उपद्रव की परवाह न करते हुए भगवान महावीर के दर्शनार्थ नगर से बाहर निकले और मृत्यु से न घबराते हुए आगे बढ़ते रहे। इस प्रकार धर्म पर दृढ़ आस्था रूप आराधना का सुन्दर रूप प्रस्तुत कर सेठ सुदर्शन ने अपना सुदर्शन नाम सार्थक किया।

ज्ञानाराधना

गौतमकुमार, समुद्रकुमार आदि मुनियों ने ग्यारह अंगों का, जालि-मयालि आदि मुनियों ने चौदह पूर्व के ज्ञान का अध्ययन किया। इस प्रकार अनेक महापुरुष ज्ञानाराधना के साथ तप-संयम का पालन कर सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुए।

चारित्राराधना

यह आगम चारित्राराधना से पूरा भरा है। सभी साधकों ने गृहस्थावस्था का त्याग कर संयम ग्रहण किया तथा समिति-गुप्ति का पालन कर चारित्र धर्म की आराधना की; कारण कि चारित्राराधना सभी साधनाओं की आधार भूमि है। चारित्र के बिना सभी आराधनाएँ अधूरी व अकार्यकारी हैं। इस आगम में वर्णित सभी महापुरुषों ने उत्कृष्ट चारित्र की आराधना कर मुक्ति प्राप्त की है।

तपसाधना

अन्तकृद्दशा सूत्र के वर्णनों पर गहराई से चिन्तन किया जाय तो साधना-क्षेत्र की विविध सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं। सामान्य तौर पर संयम और तप की विमल साधना से मुक्ति की प्राप्ति मानी गयी है। संयम का साधन ज्ञानपूर्वक ही होता है, अतः उसके लिये जीवाजीवादि का तत्त्व-ज्ञान आवश्यक माना गया है। विषय कषाय को जीतने के लिये ज्ञान या ध्यान का बल पुष्ट साधन है और तप, ज्ञान-ध्यान का साधन है अथवा ज्ञान-ध्यान स्वयं भी एक प्रकार का तप है। फिर भी व्यवहार दृष्टि से यह जिज्ञासा हो सकती है कि क्या ज्ञान-साधना से मुक्ति होती है? या ध्यान से अथवा कठोर तप साधना से या उपशम से भी मुक्ति होती है?

अंतगडदसा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि 18 मुनियों के समान 12 भिक्षु प्रतिमाओं एवं गुणरत्न संवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्म-क्षय कर मुक्ति मिला लेता है। अनीकसेन आदि मुनि

चौदह पूर्व के ज्ञान में रमण करते हुए सामान्य बेले-बेले की तपस्या से कर्म क्षय कर मुक्ति के अधिकारी बन गये। अर्जुन माली ने उपशमभाव (क्षमा) की प्रधानता से केवल छह मास में बेले-बेले की तपस्या कर सिद्धि मिला ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञानपूर्वक गुणरत्न तप की साधना से सिद्धि मिलाई और गजसुकुमाल ने बिना शास्त्र पढ़े और लम्बे समय तक साधना एवं तपस्या किये बिना ही केवल एक शुद्ध-शुक्ल ध्यान के बल से ही सिद्धि प्राप्त कर ली। इससे प्रकट होता है कि ध्यान भी एक बड़ा तप है। काली आदि रानियों ने संयम लेकर कठोर तप साधना की और लम्बे समय से सिद्धि मिलाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्म-ध्यान की अग्नि में कर्मों को झोंककर सिद्धि के अधिकारी बन गये।

निष्कर्ष यह है कि शास्त्रों के गम्भीर अभ्यास और लम्बे काल का कठोर तप चाहे हो या न हो, यदि कर्म हल्के हैं और आत्म-ध्यान में मन अडोल है तो अल्पकाल में भी मुक्ति हो सकती है।

विविध प्रकार के तप

अंतगडदसा सूत्र में ध्यान की साधना का तो स्पष्ट रूप नहीं मिलता, पर तपस्या के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं-

सर्वप्रथम भिक्षुप्रतिमाओं का वर्णन है जिसका विस्तृत उल्लेख दशाश्रुतस्कन्ध में मिलता है।

दूसरा गुणरत्न संवत्सर तप है जो गौतमकुमार आदि मुनियों के द्वारा साधा गया है। भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 में खंदक मुनि के अधिकार में इसका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है- "पहले महीने एकान्तर उपवास का पारणा, दूसरे महीने में दो-दो उपवास का पारणा, इसी प्रकार पांचवें महीने में पाँच-पाँच का, छठे महीने में छह-छह का, इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास का पारणा करना, दिन को उत्कट आसन से आतापना लेना और रात में वीरासन से खुले बदन डाँस आदि का परीषह सहना।"

तीसरा तप रत्नावली है। इसमें एक उपवास से लेकर ऊँचे सोलह तक की तपस्या चढ़ाव-उतार से की जाती है। मध्य में बेले और आदि अन्त में उपवास, बेला, तेला की तपस्या की जाती है। चारों परिपाटियों में चार वर्ष, तीन मास और छह दिन तप के और तीन सौ बावन दिन पारणे के होते हैं।

चौथा तप कनकावली है। रत्नावली के समान ही इसमें भी उपवास से लेकर सोलह तक तप का उतार-चढ़ाव होता है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें तीन स्थानों पर रत्नावली के बेले तप के बदले तेला तप किया जाता है। चारों परिपाटियों में 4 वर्ष 9 मास और 26 दिन का तप और 352 दिन पारणे के होते हैं। एक परिपाटी में 1 वर्ष 2 मास और 14 दिन का तप तथा 88 दिन पारणे के होते हैं।

पाँचवाँ तप लघुसिंह निष्क्रीड़ित है। इसमें जैसे शेर आगे-पीछे कदम रखता है, वैसे ही उपवास से लेकर पाँच तक की तपस्या में आगे बढ़ना और पीछे हटना होता है। इस प्रकार चार परिपाटी की जाती है। एक में 5 मास और 4 दिन के तप एवं 33 दिन पारणे के होते हैं। चार में 1 वर्ष 8 मास 16 दिन के तप और 132 दिन पारणे के होते हैं।

छठा तप महासिंह निष्क्रीड़ित है। इसमें ऊँचे से ऊँचे सोलह तक का तप होता है। साधना काल के 6 वर्ष 2 मास और 12 दिन में से 5 वर्ष 6 मास और 8 दिन तप के तथा 244 दिन पारणे के होते हैं।

सातवाँ तप सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा, आठवाँ अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा, नवमाँ नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा और दसवाँ तप दस-दसमिका भिक्षु प्रतिमा है।

ये चारों तप साधुओं की अपेक्षा से कहे गये हैं। इन चारों प्रतिमाओं में भोजन की दत्ति की अपेक्षा तप का आराधन किया जाता है। सप्त-सप्तमिका में प्रथम सप्ताह में एक दत्ति भोजन की व एक दत्ति पानी की दूसरे सप्ताह में दो-दो यावत् सातवें सप्ताह में सात दत्ति भोजन की एवं सात दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। इस तप के 49 दिन होते हैं। इसी प्रकार अष्ट-अष्टमिका में 64 दिन, नव-नवमिका में 81 दिन और दस-दसमिका में 100 दिन होते हैं। दिन के प्रमाण से प्रथम से सप्त में एक-एक सप्ताह में एक-एक दत्ति बढ़ानी और आठवें में आठ-आठ दिन से, नव-नवमिका में नौ-नौ दिन से और दस-दसमिका में दस-दस दिन से एक-एक दत्ति बढ़ानी चाहिये।

ग्यारहवाँ तप लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा है। इसमें अनानुपूर्वी क्रम से एक उपवास से पाँच उपवास तक 5 लाइने की जाती हैं। एक परिपाटी में 75 दिन का तप और 25 दिन पारणे के होते हैं। इस प्रकार चार परिपाटियों में तप की पूर्ण आराधना की जाती है।

बारहवाँ महासर्वतोभद्र तप है। इसमें पूर्व कथित प्रकार से एक उपवास से सात उपवास तक किये जाते हैं। एक परिपाटी में 196 दिन तप के और 49 दिन पारणे के होते हैं।

तेरहवीं भद्रोतर प्रतिमा है। इस तप में 5, 6, 7, 8, 9 इस प्रकार अनानुपूर्वी से पाँच पंक्तियों में तपस्या की एक परिपाटी पूर्ण होती है। जिसमें 6 मास 20 दिन का समय लगता है। तप के 175 दिन और पारणे के 25 दिन होते हैं।

चौदहवाँ आयंबिल वर्धमान तप है। इसमें 1 से 100 तक आयंबिल बढ़ाये जाते हैं। पारणे के दिन बीच में उपवास किया जाता है। आयंबिल के कुल 5050 दिन और 100 दिन उपवास के होते हैं। साधारण दिखने पर भी यह तप बड़ा महत्त्वशाली और कठिन है।

पन्द्रहवाँ मुक्तावली तप है। इसमें ऊँचे से ऊँचा सोलह तक का तप होता है। एक परिपाटी में 285 दिन का तप और 60 पारणे के दिन होते हैं। चारों परिपाटियाँ 3 वर्ष 10 मास में पूर्ण होती हैं।

पर्युषण में अंतगड का वाचन

बहुत बार यह जिज्ञासा होती है कि पर्युषण में अंतगड का वाचन आवश्यक क्यों माना जाता है? अन्य किसी सूत्र का वाचन क्यों नहीं किया जाता? बात ठीक है, शास्त्र सभी मांगलिक है और उनका पर्व दिनों में वाचन भी हो सकता है, कोई दोष की बात नहीं है। विचार केवल इतना ही है कि पर्वाधिराज के इन अल्प दिनों में ऐसे सूत्र का वाचन होना चाहिये जो आठ ही दिनों में पूरा हो सके और आत्म-साधना की प्रेरणा देने में भी पर्याप्त हो। अंग या उपांग में ऐसा कोई अंग-सूत्र नहीं है जो इस मर्यादित काल में पूरा हो सकें। अनुत्तरौपपातिक दशा है तो यह अति लघु होने के साथ इतनी प्रेरक सामग्री भी प्रस्तुत नहीं करता। फिर उसमें

वर्णित साधक अनुत्तरविमान के ही अधिकारी होते हैं, मोक्ष के नहीं। परन्तु अन्तकृद्दशा में ये दोनों बातें हैं। वह अतिलघु या महत् आकार में नहीं है। साथ ही उसमें ऐसे साधकों की जीवन गाथा है जो तप-संयम से कर्म क्षय कर पूर्णानन्द के भागी बन चुके हैं। अन्तकृद्दशा के उद्देश समुद्देश का काल भी आठ दिन का है और पर्युषण का अष्टाह्निक पर्व भी अष्टगुणों की प्राप्ति एवं अष्ट कर्मों की क्षीणता के लिये है। अतः पर्युषण में इसी का वाचन उपयुक्त है।

प्रस्तुत सूत्र में छोटे-बड़े ऐसे साधकों की जीवन गाथा बताई गई है जिनसे आबाल वृद्ध सब नर-नारी प्रेरणा ले सकें और अपनी योग्यतानुसार साधना कर आत्म-विकास कर सकें। यही खास कारण है कि पूर्वाचार्यों ने पर्युषण के अष्टाह्निक पर्व में आठ वर्ग वाले इस मंगलमय शास्त्र का बोध प्रद वाचन निश्चित किया। जिस प्रकार मंगलहेतु एवं ऐतिहासिक परिचय प्रदान करने के लिए कल्पसूत्र में भगवान महावीरादि के पंच-कल्याणक और पट्टावली का वाचन आवश्यक माना गया है, वैसे ही लगता है कि आत्मसाधना की प्रेरणा प्रदान करने के लिये अन्तकृद्दशांगसूत्र का वाचन भी आरम्भ किया हो।

वीर निर्वाण सं.993 के समय 'कल्प-सूत्र' का सामूहिक वाचन होने लगा था। सम्भव है उस समय साधना प्रेमी सन्तों ने यह सोचकर कि कल्पसूत्र में केवल तीर्थंकर भगवान की गुण-गाथा है, चतुर्विध संघ की साधना के लिये वैसी प्रेरणादायक सामग्री नहीं है, अतः अन्तकृत जैसे साधना के आदर्श बताने वाले शास्त्र का वाचन आवश्यक माना हो, अथवा तो समाज में आडम्बर और जन्म-महोत्सव की भक्ति आदि की ओर बढ़ते मोड़ को बदलने के लिये अन्तकृद्दशांग सूत्र का वाचन चालू किया हो। किन्तु इतना सुनिश्चित है कि पर्वाधिराज में अन्तकृत सूत्र का वाचन सहेतुक एवं उपयोगी है।

अन्तगड़ सूत्र की मुख्य विषयवस्तु :

(1) संख्या वर्गीकरण :

अ) प्रस्तुत आगम में 90 आत्माओं का वर्णन हुआ है।

ब) जिसमें भगवान् अरिष्टनेमि के शासन की 51 एवं भगवान महावीर के शासन की 39 आत्माओं का वर्णन है।

स) कुल पुरुष 57, कुल स्त्रियाँ 33 अंतकृत केवली हुई। श्री अरिष्टनेमि के शासन में 41 एवं श्री महावीर स्वामी के शासन में 16 पुरुष। श्री अरिष्टनेमि के शासन में 10 एवं श्री महावीर स्वामी के शासन में 23 स्त्रियाँ अंतकृत केवली हुई।

अर्थात् 90 ही महापुरुषों ने जीवन के अन्तिम क्षणों में केवल ज्ञान को प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् ही सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गये।

(2) निर्वाण :

अ) सभी साध्वियों का निर्वाण स्थल सामान्य साधना स्थल - उपाश्रय, उद्यान या यक्षायतन आदि विचरण स्थल ही रहा।

ब) पुरुष वर्ग में गजसुकुमाल का निर्वाण स्थल श्मशान भूमि रहा।

स) भगवान अरिष्टनेमि के शासन के शेष पुरुषों का निर्वाण शत्रुंजय पर्वत रहा।

द) भगवान महावीर स्वामी के शासन के अर्जुन माली के अतिरिक्त शेष पुरुष केवलियों का निर्वाण स्थल विपुलगिरि पर्वत रहा, अर्जुन माली के निर्वाण स्थल का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

3) संथारा :

अ) गजसुकुमालजी के संथारा नहीं (व्यवहार रूप से)।

ब) अर्जुन मालाकार के संथारा 15 दिन का।

स) अन्य 88 आत्माओं के संथारा 30-30 दिन का।

4) शिक्षा :

अ) सभी स्त्री आत्माओं के 11 अंग का अध्ययन।

ब) गजसुकुमालजी के श्रुत ज्ञान विशेष अध्ययन नहीं।

स) तीसरे वर्ग के 13 अध्ययनों में से गजसुकुमाल मुनि के अतिरिक्त 12 नायकों को 14 पूर्वों का अध्ययन।

द) चौथे वर्ग के 10 नायकों को द्वादशांगी का अध्ययन।

य) अर्जुन माली के श्रुत ज्ञान के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

र) शेष सभी महापुरुषों के 11 अंगों का अध्ययन हुआ।

(5) दीक्षा :

अ) सभी पुरुष नायक अपने-अपने शासनपति तीर्थंकर प्रभु के पास दीक्षित हुए, उन्हीं के सान्निध्य में रहे।

ब) भगवान अरिष्टनेमि के शासन में यक्षिणी साध्वीजी प्रवर्तिनी हुई एवं भगवान महावीर के शासन में आर्या चन्दनबालाजी प्रवर्तिनी हुई। दीक्षा उपरान्त सभी साध्वीजी इनके सान्निध्य में रहीं।

स) सबसे कम दीक्षा पर्याय गजसुकुमाल मुनि की (कुछ घण्टे) हुई।

द) सबसे अधिक दीक्षा पर्याय एवंता मुनि की (कई वर्षों की) हुई।

(6) अन्य वर्गीकरण :

अ) गजसुकुमाल एवं एवन्तामुनि ये दो ही बाल ब्रह्मचारी हुए, अन्य सभी ने विवाहोपरान्त भोगों को त्याग कर दीक्षा ग्रहण की।

ब) एक राजा दीक्षित हुए, महावीर प्रभु के शासन में छठे वर्ग के सोलहवें चरित्र नायक श्री अलक्ष, वाराणसी के राजा। इसके अतिरिक्त भगवान अरिष्टनेमिजी के शासन के तीसरे वर्ग के आठवें नायक गजसुकुमाल एवं भगवान महावीर के शासन के छठे वर्ग के पन्द्रहवें अध्ययन में एवंता कुमार इन दोनों का एक-एक

दिन के लिए राज्याभिषेक। अन्य सभी राजकुमार, गाथापति, अर्जुन मालाकार (किसान, माली) एवं रानियाँ आदि दीक्षित हुए थे।

स) अर्जुन माली के अतिरिक्त अन्य सभी राजकुल एवं श्रेष्ठी कुल से दीक्षित हुए।

द) गजसुकुमाल एवं अर्जुन अणगार को परीषह सहने पड़े, अन्य किसी को परीषह नहीं आए।

य) 1. प्रथम व द्वितीय वर्ग के 18 नायकों ने गुण रत्न संवत्सर तप की आराधना एवं 12 भिक्षु प्रतिमाओं का पालन किया।

2. अनीकसेन आदि मुनियों ने 14 पूर्वों का ज्ञान एवं बेले-बेले तप की आराधना की।

3. गजसुकुमाल मुनि ने आत्म ध्यान से मुक्ति प्राप्त की।

4. अर्जुन माली ने क्षमा से मुक्ति प्राप्त की।

5. एवंतामुनि ने लम्बी दीक्षा पर्याय, ज्ञानाराधना एवं गुणरत्न संवत्सर तप से मुक्ति प्राप्त की।

6. काली आदि महारानियों ने कठोर तप से मुक्ति प्राप्त की।

इस प्रकार इस आगम में ज्ञान, क्षमा, आत्म-ध्यान, सामान्य बेले-बेले तप, उत्कृष्ट कठोर तपस्या आदि सभी मोक्ष मार्ग के सहयोगी अंगों का वर्णन है।

र) इस आगम में श्रेणिक एवं कृष्ण इन दोनों नरेशों का भी विशेष वर्णन आया है जिन्होंने दीक्षा तो नहीं ली पर दृढ़ श्रद्धा एवं धर्म दलाली से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन कर लिया। आगामी चौबीसी में श्रेणिक प्रथम - 'पद्मनाभ' एवं श्रीकृष्ण बारहवें- 'अमम' नामक तीर्थंकर बनेंगे। देवकी रानी भी भवान्तर से (मध्य में अन्य भव करके) आने वाली चौबीसी में 11वें तीर्थंकर 'श्री मुनिसुव्रतजी' के रूप में उत्पन्न होंगी।

तत्त्व विभाग-

जयन्ती बाई के प्रश्न

श्री भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 2 में 'जयन्ती बाई' के प्रश्न और भगवान के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है-

प्र.1- अहो भगवन्! जीव के भारी होने का क्या कारण है और किस प्रकार जीव हल्का होता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह प्रकार के पापों के आचरण से जीव भारी होता है और इन पापों से विरत होने (त्याग करने) से जीव हल्का होता है।

प्र.2- अहो भगवन्! किस कारण से जीव संसार को बढ़ाता है और किस आचरण से संसार को घटाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों के आचरण से जीव संसार बढ़ाता है और अठारह पापों से निवृत्त होकर जीव संसार को घटाता है।

प्र.3- अहो भगवन्! किस कारण से जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है और किस आचरण से घटाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों का आचरण करके जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है और अठारह पापों का त्याग करके जीव कर्मों की स्थिति घटाता है।

प्र.4- अहो भगवन्! किस कारण से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और किस विधि से जीव, संसार-सागर को तिर कर पार हो जाता है?

उत्तर- हे जयंती! अठारह पापों के सेवन से जीव संसार-सागर में रुलता रहता है और अठारह पापों का त्याग कर के जीव, संसार से तिर जाता है।

प्र.5- अहो भगवन्! जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, या परिणाम से?

उत्तर- हे जयंती! जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नहीं।

प्र.6- अहो भगवन्! क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे?

उत्तर- हे जयन्ती! सभी भवसिद्धिक जीव, मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्र.7- अहो भगवन्! सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जायेंगे, तो क्या लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा?

उत्तर- हे जयन्ती! णो इणट्ठे समट्ठे - यह नहीं हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।

अहो भगवन्! इसका क्या कारण है?

हे जयंती! यथा-दृष्टान्त - जैसे आकाश की श्रेणी अनादि अनन्त हैं। उसमें से एक-एक परमाणु खण्ड जितना प्रदेश, एक-एक समय में निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्ती अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष जायेंगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से कभी भी खाली नहीं होगा। {जितने जीव मोक्ष में जाते हैं, उतने ही भव्य जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आ जाते हैं, इस कारण से व्यवहार राशि में भव्य जीव हमेशा बराबर ही रहते हैं। वर्तमान, भूत और भविष्यत् काल के उदाहरण से इस तथ्य को आसानी से समझा जा सकता है। जैसे भविष्यत् काल वर्तमान में आता है और एक समय बाद भूत में चला जाता है। यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलेगा। किन्तु फिर भी भविष्यत् काल का कभी अन्त नहीं होगा। अव्यवहार राशि में इतने अनन्तानन्त भव्य जीव हैं कि कभी भी उनका अन्त ही नहीं आता। व्यवहार राशि में भव्य तथा अभव्य दोनों प्रकार के जीव अनादि काल से रहे हुए हैं। व्यवहार राशि के सभी भव्य जीव अवश्य मोक्ष में जाते हैं। अव्यवहार राशि में भवी जीव ही है। अभवी जीव नहीं है। अव्यवहार राशि में ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, जिन्हें कभी वहाँ से निकलने का अवसर ही नहीं मिल पाता, इसलिए वे भव्य होते हुए भी मोक्ष में नहीं जा पाते। जो व्यवहार राशि में आ जाते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष में जाते हैं।}

प्र.8- अहो भगवन्! जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे?

उत्तर- हे जयंती! कोई जीव सोते हुए अच्छे होते हैं और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते हैं।

अहो भगवन्! इसका क्या कारण है ?

हे जयंती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनन्द मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख नहीं दे पाते, यावत् परितापना नहीं उपजाते, अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं। जो जीव धर्मी हैं, यावत् धर्म से आजीविका करते हैं, वे जागते हुए अच्छे हैं। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व के लिए सुखकारी होते हैं, यावत् अपनी तथा दूसरों की आत्मा को धर्म में जोडते हैं।

प्र.9-10. जिस प्रकार सोते-जागते के प्रश्नोत्तर कहे, उसी प्रकार बलवान् व निर्बल तथा उद्यमी और आलसी के विषय में भी कहना चाहिये। इसमें विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च (सेवा) में अपनी आत्मा को जोड़ेगा।

प्र.11- अहो भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बांधता है?

उत्तर- हे जयंती! आयुष्य कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो तो

तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं भी बांधता। असातावेदनीय कर्म बार-बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

प्र.12-15. जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में कहा, उसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में भी कहना चाहिये।

जयंती श्रमणोपासिका अपने प्रश्नों का उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण सन्तोष हुआ। उसने देवानन्दा की तरह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गति को प्राप्त किया।

गति- आगति के थोकड़े से सम्बन्धित ज्ञातव्य तथ्य

गति-आगति के थोकड़े को सुगमता से समझने हेतु यहाँ कुछ नियम प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

1. गति-वर्तमान भव की आयुष्य के अन्तिम समय की पर्याय/गुण की अपेक्षा से गति बतलाई गई है, अर्थात् जिस पर्याय/गुण में रहते हुए जीव काल करके जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है, उसे गति कहते हैं।

2. अगले भव में यदि वह जीव अवश्य ही पर्याप्त बनने वाला है तो उसकी गति में अपर्याप्त व पर्याप्त दोनों भेद माने जाते हैं। जैसे-प्रथम नरक के जीवों की गति में-15 कर्म भूमिज मनुष्य व पाँच सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, इन 20 के अपर्याप्त-पर्याप्त, इस प्रकार कुल 40 भेद माने जाते हैं।

3. यदि वह अगले भव में अपर्याप्त अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होने वाला है तो मात्र अपर्याप्त के भेद ही लिये जाते हैं। जैसे कोई कर्म भूमिज तिर्यञ्च या मनुष्य यदि लब्धि अपर्याप्त तिर्यञ्च या मनुष्य के रूप में जाकर उत्पन्न होता है तो उसकी गति में मात्र अपर्याप्त के भेद ही लिए जायेंगे।

4. सम्यग्दृष्टि की गति में परमाधामी व किल्विषी देवों को तथा सातवीं नारकी के जीवों को नहीं लिया गया, क्योंकि इनमें सम्यग्दृष्टि अवस्था में कोई भी जीव नहीं जाता है। इनमें उत्पत्ति के समय जीव मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं।

5. सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, मति-श्रुत- अवधिज्ञान, अज्ञान आदि कुछ पर्यायें तो मरण समय में तथा बाटा बहते जीव में भी मिलती है, किन्तुश्रावकपना, साधुपना, मनःपर्याय ज्ञान, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, माण्डलिक राजा आदि पर्यायें भव के अंतिम समय तक ही मिलती है। बाटा बहती अवस्था में नहीं मिलती है। अतः गति में मरण समय की पर्याय की अपेक्षा से ही कथन समझना चाहिए।

6. आगति-किसी भव विशेष में उत्पन्न होने के पश्चात् जीवन भर में जो भी पर्याय/गुण वह जीव प्राप्त करता है, वह जिस गति, जाति आदि जीव के भेदों में से आकर उत्पन्न हुआ है, उन भेदों के आधार पर (आगति के 371 जीव के भेदों में से) आगति का कथन किया जाता है।

7. जैसे-मिथ्यादृष्टि की आगति में 5 अनुत्तरविमान के देवों को भी लिया गया है। यद्यपि पाँच अनुत्तरविमान से आये हुए मनुष्य उत्पत्ति के समय में सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, तथापि मनुष्य भव में पर्याप्त बनने के बाद परिणामों की कलुषता से मिथ्यात्व आ सकता है, इसलिए 5 अनुत्तरविमान के देवों को मिथ्यादृष्टि की आगति में लिया है।

8. प्रज्ञापनासूत्र पद-20 के अनुसार तेउकाय, वायुकाय से निकला हुआ जीव आगामी एक भव में सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता, इसी कारण से तेउकाय, वायुकाय के जीवों को सम्यग्दृष्टि की आगति में नहीं लिया गया।

9. परमाधामी व किल्विषी देवों तथा सातवीं नारकी के जीवों को सम्यग्दृष्टि की आगति में लिया है, क्योंकि परमाधामी व किल्विषी से आये हुए जीवों में मनुष्य व तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में तथा सातवीं नारकी से आये हुए जीवों में तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में समकित प्राप्त हो सकती है अर्थात् वे मनुष्य व तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के भव में सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं।10. नरक एवं देव गति से आयुष्य पूर्ण कर जीव पुनः नरक एवं देवगति में उत्पन्न नहीं होते अर्थात् वैक्रिय के दो भव लगातार नहीं होते हैं।

11. एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चौरेन्द्रिय जीव आयुष्य पूर्ण कर नरक गति, देव गति एवं युगलिक मनुष्य तथा युगलिक तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होते।

12. असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर पहली नरक, 51 जाति के देव (25 भवनपति एवं 26 वाणव्यंतर) तक उत्पन्न हो सकते हैं।

13. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के-

भुजपरिसर्प- दूसरी नरक तक
खेचर- तीसरी नरक तक
स्थलचर- चौथी नरक तक
उरपरिसर्प- पाँचवीं नरक तक
जलचर- छठी व सातवीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

14. अपर्याप्त अवस्था में आयुष्य पूर्ण कर जीव नरक गति, देव गति एवं युगलिक में उत्पन्न नहीं होते।

15. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयुष्य पूर्ण कर आठवें देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं। नवमें देवलोक एवं उसके आगे गति एवं आगति कर्मभूमिज मनुष्यों की ही है।

16. तेउकाय, वायुकाय के जीव आयुष्य पूर्ण कर तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं।

17. भवनपति से लेकर आठवें देवलोक तक के देवता काल करके तिर्यंच गति में तथा मनुष्य गति में, दोनों में उत्पन्न हो सकते हैं।

18. 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य के पर्याप्त जीव चारों गतियों में, सभी स्थानों पर जाकर उत्पन्न हो सकते हैं।

19. सातवीं नरक के जीव आयुष्य पूर्ण कर सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं।

20. युगलिक मनुष्य व युगलिक तिर्यंच ये दोनों आयुष्य पूर्ण कर देव गति में ही उत्पन्न होते हैं-

देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक- पहले किल्विषी तक
हरिवास-रम्यक्वास के युगलिक- दूसरे देवलोक तक
हेमवत-ऐरण्यवत् के युगलिक- पहले देवलोक तक
56 अन्तर्द्वीप के युगलिक- भवनपति एवं वाणव्यन्तर तक उत्पन्न होते हैं।

21. पहले किल्विषी तक के 64 जाति के देव (25 भवनपति, 26 वाणव्यन्तर, 10 ज्योतिषी, पहला-दूसरा देवलोक, पहला किल्विषी) आयुष्य पूर्ण कर बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, प्रत्येक वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो सकते हैं।

22. उपर्युक्त 64 देवों के अतिरिक्त शेष सभी वैक्रिय (7 नरक, 35 देव-10 देवलोक, 2 किल्विषी, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान) के जीव अपना आयु पूर्ण कर मात्र सन्नी पंचेन्द्रिय तिर्यंच या 15 कर्मभूमि मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। नवमें देवलोक एवं ऊपर वाले सभी देव मात्र कर्मभूमिज मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

23. अलग-अलग नरकों से निकलने वाले नारक जीव निम्नानुसार बन सकते हैं-

पहली से सातवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- सम्यग्दृष्टि
पहली से छठी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- श्रावक
पहली से पाँचवीं नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर- साधु

पहली से चौथी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	केवली
पहली से तीसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	तीर्थंकर
पहली से दूसरी नरक तक के आयुष्य पूर्ण कर-	(वासुदेव, बलदेव)
पहली नरक का आयुष्य पूर्ण कर-	चक्रवर्ती

24. नरक गति, देवगति एवं युगलिक तथा सम्यग्दृष्टि जीव आयुष्य पूर्ण कर अगले भव में अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते।

गति-आगति का थोकड़ा

अनेक सूत्रों एवं ग्रन्थों में गति-आगति का अधिकार चले सो कहते हैं। जीवों के जाने के स्थानों को गति कहते हैं और जहाँ-जहाँ से जीव आता है, उसे आगति कहते हैं।

जीव के 563 भेद– नरक के 14, तिर्यंच के 48, मनुष्य के 303 और देवता के 198 भेद।

1. समुच्चय जीव की आगति 371 की– (563 में से 7 नारकी, 86 युगलिक मनुष्य और 99 जाति के देवता, इन 192 के अपर्याप्ता को छोड़कर, क्योंकि ये अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते हैं) गति-563 की।

2. पहली नारकी की आगति 25 की– (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच और 5 असन्नी तिर्यंच, ये 25 के पर्याप्ता)।

गति 40 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच, इन 20 के पर्याप्ता और अपर्याप्ता)

3. दूसरी नरक की आगति 20 की– (पहली नारकी की आगति के 25 में से 5 असन्नी को छोड़कर) गति 40 की - पहली नारकी के समान पूर्ववत्।

4. तीसरी नरक की आगति 19 की– (ऊपर के बीस में से भुजपरिसर्प को छोड़कर) गति 40 की पूर्ववत्।

5. चौथी नरक की आगति 18 की– (ऊपर के 19 में से खेचर को छोड़कर) गति 40 की पूर्ववत्।

6. पाँचवीं नरक की आगति 17 की– (ऊपर के 18 में से स्थलचर को छोड़कर) गति 40 की पूर्ववत्।

7. छठी नरक की आगति 16 की– (ऊपर के 17 में से उरपरिसर्प को छोड़कर) गति 40 की पूर्ववत्।

8. सातवीं नरक की आगति 16 की– पूर्ववत्, किन्तु स्त्री वेद को छोड़कर अर्थात् स्त्री पर्याय वाला जीव सातवीं नरक में नहीं जाता। **गति–** 10 की (5 सन्नी तिर्यंच के पर्याप्ता-अपर्याप्ता)।

9. इक्कावन जाति के देवता (10 भवनपति, 15 परम अधार्मिक, 16 वाणव्यन्तर, 10 त्रिजृंभक) इनकी आगति 111 की (101 सन्नी मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सब के पर्याप्ता) गति- 46 की (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय, इन 23 के पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता)।

10. ज्योतिषी एवं पहले देवलोक की आगति 50 की– (15 कर्मभूमिज मनुष्य, 30 अकर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सबके पर्याप्ता) गति 46 की पूर्ववत्।

11. दूसरे देवलोक की आगति 40 की– (ऊपर के 50 में से 5 हेमवय और 5 ऐरण्यवय छोड़कर) गति 46 की पूर्ववत्।

12. पहले किल्विषी की आगति 30 की– (ऊपर के 40 में से 5 हरिवास 5 रम्यक्वास को छोड़कर) गति 46 की पूर्ववत्।

13. तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक, 9 लोकान्तिक और दूसरा-तीसरा किल्विषी, इन 17 प्रकार के देवों की आगति 20 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य और 5 सन्नी तिर्यंच का पर्याप्ता) गति 40 की- (उपर्युक्त 20 के पर्याप्ता और अपर्याप्ता)।

14. नवमें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक के देवों की आगति 15 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्ता)।

गति 30 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्ता और अपर्याप्ता)।

15. बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय इन तीनों की आगति 243 की- {179 की लड़ (101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 30 कर्मभूमिज मनुष्य, 48 तिर्यंच) और 10 भवनपति, 15 परमाधार्मिक, 16 वाणव्यन्तर 10 जृंभक, 10 ज्योतिषी, पहला किल्विषी और पहला, दूसरा देवलोक, इस प्रकार 64 जाति के देवता के पर्याप्ता 179 + 64 = 243} गति - 179 की लड़।

16. सूक्ष्म व बादर तेऊकाय, वायुकाय की आगति 179 की- (179 की लड़ पूर्ववत्) गति - 48 की (तिर्यंच के 48)।

17. सूक्ष्म पृथ्वी, सूक्ष्म अप्, सूक्ष्म व साधारण वनस्पति एवं तीन विकलेन्द्रिय की आगति- 179 की, गति - 179 की पूर्ववत्।

18. असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 179 की पूर्ववत्। गति 395 की- (56 अन्तरद्वीपज, 51 जाति के देवता और पहली नरक, इन 108 के पर्याप्ता अपर्याप्ता 216+179 की लड़ = 395)।

19. सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति 267 की- (99 जाति के देवता में से 9 वें देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त 18 भेद छोड़कर शेष 81 जाति के देवता और 7 नारकी, इन 88 के पर्याप्ता और 179 की लड़) गति - पाँच भेदों की अलग-अलग-

1. जलचर की गति 527 की- (नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त के 18 जाति के देवता के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, इन 36 भेदों (जीवों) को 563 में से छोड़कर)।

2. थलचर (स्थलचर) की गति 521 की- (उपर्युक्त 527 में से पाँचवीं, छठी और सातवीं नरक के पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

3. खेचर की गति 519 की- (उपर्युक्त 521 में से चौथी नरक का पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

4. उरपरिसर्प की गति 523 की- (उपर्युक्त 519 एवं चौथी, पाँचवीं नरक के पर्याप्ता अपर्याप्ता ये चार भेद और मिलाकर)।

5. भुजपरिसर्प की गति 517 की- (523 में से तीसरी, चौथी, पाँचवीं नरक का पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

20. असन्नी मनुष्य की आगति 171 की- (179 की लड़ में से 4 तेऊकाय के एवं 4 वायुकाय के, इन 8 भेदों को छोड़कर) गति 179 की पूर्ववत्।

21. 15 कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति 276 की- (99 जाति के देवता, पहली से छठी तक ये छः नरक, एवं 179 की लड़ में से तेऊकाय, वायुकाय के 8 भेद छोड़कर 171+99+6= 276) **गति-** 563 की।

22. 30 अकर्मभूमिज सन्नी मनुष्य की आगति 20 की- (15 कर्मभूमिज मनुष्य एवं 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता) गति अलग-अलग - 5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु की गति 128 की- (64 जाति के देवता के पर्याप्ता अपर्याप्ता)

5 हरिवास और 5 रम्यक्वास की गति 126 की- (उपर्युक्त 128 में से पहला किल्विषी का पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

5 हेमवय और 5 ऐरण्यवय की गति 124 की- (उपर्युक्त 126 में से दूसरे देवलोक के पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

23. 56 अन्तरद्वीपों के युगलिक मनुष्यों की आगति 25 की- (पहली नरक की तरह 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी, 5 असन्नी तिर्यंच इन सबके पर्याप्ता) **गति-** 102 की - (51 जाति के देवता के पर्याप्ता अपर्याप्ता)।

24. तीर्थंकर की आगति 38 की- (35 वैमानिक देवता- (3 किल्विषी छोड़कर) और पहली से तीसरी नरक इन सबके पर्याप्ता) **गति-** मोक्ष की।

25. चक्रवर्ती की आगति 82 की- (15 परमाधार्मिक एवं 3 किल्विषी ये 18 भेद छोड़कर 81 जाति के देवता एवं पहली नरक, इनके पर्याप्ता) **गति-** चक्रवर्ती पद पर रहते हुए काल करे तो गति 14 की - (7 नरक के पर्याप्ता, अपर्याप्ता), पदवी त्याग कर काल करे तो गति साधु की तरह 70 जाति के देवता की- (35 वैमानिक देवता के पर्याप्ता, अपर्याप्ता) अथवा मोक्ष की।

26. बलदेव की आगति 83 की- (चक्रवर्ती के 82 एवं दूसरी नरक का पर्याप्ता)।

गति- पदवी अमर, नियमा साधु बनते हैं अर्थात् 70 जाति के देवता या मोक्ष की पूर्ववत्।

27. वासुदेव की आगति 32 की- (35 वैमानिक में से 5 अनुत्तर विमान को छोड़कर 30 वैमानिक देवता एवं पहली, दूसरी नरक, इनके पर्याप्ता) **गति-** 14 की (7 नरक के पर्याप्ता, अपर्याप्ता)

28. केवली की आगति 108 की- (15 परमाधार्मिक एवं 3 किल्विषी को छोड़कर 81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, बादर पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और पहली से चौथी नरक तक, इस तरह 81+15+5+1+1+1+4 = 108 के पर्याप्ता) **गति-** मोक्ष की।

29. (आराधक) साधुजी की आगति 275 की- (सन्नी मनुष्य के 276 की आगति में से छठी नरक का पर्याप्ता छोड़कर)।

गति- 70 जाति के देवता या मोक्ष की पूर्ववत्।

30. (आराधक) श्रावकजी की आगति 276 की- (सन्नी मनुष्यवत्)। **गति-** 42 की (12 देवलोक एवं 9 लौकान्तिक, इनके पर्याप्ता अपर्याप्ता)

31. सम्यग्दृष्टि की आगति 363 की- (समुच्चय जीव की आगति 371 में से तेऊकाय, वायुकाय के 8 छोड़कर)। **गति-** 282 की (81 जाति के देवता, 15 कर्मभूमिज मनुष्य 30 अकर्मभूमिज मनुष्य, 6 नरक (सातवीं नरक छोड़कर) और 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन 137 के पर्याप्ता अपर्याप्ता = 274, 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं तीन विकलेन्द्रिय, इन 8 के अपर्याप्ता 274+8 = 282)।

32. मिथ्यादृष्टि की आगति 371 की★

गति- 553 की (पाँच अनुत्तर विमान के पर्याप्ता, अपर्याप्ता छोड़कर)।

33. स्त्रीवेद की आगति 371 की- (समुच्चय जीववत्) **गति-** 561 की (सातवीं नरक का पर्याप्ता अपर्याप्ता छोड़कर)।

34. पुरुष वेद की आगति 371 की- (समुच्चय जीववत्) **गति-** 563 की।)

35. नपुंसक वेद की आगति 285 की- (179 की लड़, 99 जाति के देवता और 7 नरक के पर्याप्ता) **गति-** 563 की।

36. गर्भज की आगति 285 की- (पूर्ववत्) **गति-** 563 की।

37. नोगर्भज की आगति 329 की- (179 की लड़, 86 युगलिक मनुष्य और 64 जाति के देवता, इनके पर्याप्ता) **गति-** 395 की (असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रियवत्)।

38. माण्डलिक राजा की आगति 276 की- सन्नी मनुष्यवत्।

गति- 535 की (563 भेदों में से 9 ग्रैवेयक एवं 5 अनुत्तर विमान देव के पर्याप्ता अपर्याप्ता, इन 28 भेदों को छोड़कर)।

।। गति आगति का थोकड़ा समाप्त ।।

★ **टिप्पणी-** सुख विपाक सूत्र में सुबाहुकुमार के वर्णन में उल्लिखित सर्वार्थ सिद्ध विमान से आने के बाद मनुष्य भव में केवल बोधि (सम्यग्दर्शन) पाने का वर्णन मिलने से तथा पन्नवणा सूत्र के 15 वें इन्द्रिय पद में भी चार अनुत्तर विमान से आया हुआ जीव मिथ्यात्वी हो सकता है, तभी उसके 16 द्रव्येन्द्रियाँ घटित होती हैं, के वर्णन से मिथ्यादृष्टि की आगति 371 मानना ठीक लगता है- सम्पादक।

प्रार्थना विभाग-

रत्नाकर पच्चीसी

शुभकेलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से, पूजितचरण गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सब से सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में।।1।।

संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो,
जयश्रीश! रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा अवतार हो,
गतराग! हे विज्ञप्ति मेरी, मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए।।2।।

माता पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली?
अपने हृदय के हाल को, वैसे यथोचित रीति से -
मैं कह रहा हूँ आपके, आगे विनय से प्रीति से।।3।।

मैंने नहीं जग में कभी कुछ, दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावना मेरी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि-धार में ।।4।।

क्रोधाग्नि में मैं रातदिन हा, जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे विभो!
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हो स्मृत आप, माया-जाल में मैं व्यस्त हूँ।।5।।

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, चीखता हूँ शोक में।
मुझ तुल्य ही नर-नारियों का, जन्म जग में व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर! वह भवों की, पूर्णता के अर्थ है।।6।।

प्रभु! आपने निज मुख-सुधा का, दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रस में डूब कर, सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र-सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही।।7।।

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है, प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहुकाल तक बहुबार जब, जग का भ्रमण मैंने किया।
हा! खो गया वह भी विवश, मैं नींद आलस में रहा,
अब बोलिए उसके लिए, रोऊँ-प्रभो! किसके यहाँ ? ।।8।।

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।

झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हँसी ।।9।।

पर दोष को कह जीभ मेरी, है सदा दूषित हुई,
लख कर पराई नारियाँ, हा! आँख भी दूषित हुई।
मन भी मलिन है सोच कर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भाँति होगी लोक में, मेरी भलाई हे विभो? ।।10।।

मैंने बढ़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुःख राक्षसी।
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ! हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया।।11।।

अन्यान्य मंत्रों से, परम परमेष्ठी मन्त्र हटा दिया,
सत् शास्त्र वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया,
विधि उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ! यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या-क्या किया?।।12।।

हा! तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
आराधना की मूढ़तावश, मूढ़ लोगों की विभो!
वामाक्षियों के कुच कटाक्षों, पर सदा मरता रहा,
उनसे विलासों का हृदय में, ध्यान मैं धरता रहा।।13।।

लखकर चपल दृग् युवतियों के, मुख मनोहर रसमयी,
मम मन पटल पर राग-भावों की, मलिनता बस गई।
वह शास्त्र निधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई,
बतलाइये प्रभु आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई।।14।।

मुझमें न अपने अंग के, सौन्दर्य का आभास है,
मुझमें न गुण-गण है विमल, मुझमें न कला-विलास है।
प्रभुता न मुझमें स्वप्न की भी, है चमकती देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्व से, मैं मूढ़ हो किसके लिए?।।15।।

हा! नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं,
आयु बुढ़ौती पर विषय, से कामना हटती नहीं।
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म में करता नहीं,
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं।।16।।

अघ पुण्य को जग आत्म को, मैंने कभी माना नहीं,
हा! आप आगे हैं खड़े, सर्वज्ञ रवि यद्यपि यहीं।
तो भी खलों के वाक्य को, मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा।।17।।

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन, कुछ नहीं मैंने किया,
मुनि-धर्म श्रावक-धर्म, भी विधिवत् नहीं पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,

मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा।।18।।

प्रत्यक्ष सुखकर जैन मत में, प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही।
हा! कामधुक् कल्पद्रुमादिक, के यहाँ रहते हुए,
मैंने गँवाया जन्म को, धिक् लाख-दुःख सहते हुए।।19।।

मैंने न रोका रोग-दुःख, संभोग सुख देखा किया,
मन में न माना मृत्यु भय, धन लाभ का लेखा किया।
हा! मैं अधम पुद्गल सुखों का, ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा।।20।।

सद्वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा! साधिता,
उपकार करके कीर्त्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता।
चउ तीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाया नहीं,
नर-जन्म पारस तुल्य निज, मैंने गँवाया व्यर्थ ही ।।21।।

शास्त्रोक्त-विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं,
खल वाक्य भी गत-क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं।
अध्यात्म विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ।।22।।

सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं।
इस भाँति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हो?
संसार में फिर जन्म मेरे, त्रिविध कैसे नष्ट हो?।।23।।

हे पूज्य! अपने चरित को, बहुभाँति गाऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुझ से छिपी है, पापमय मेरी कथा।
क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो।।24।।

दीनोद्धारक धीर आप सा, अन्य नहीं है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न मुझसा, अपर कहीं है।
तो भी माँगूँ नहीं, धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन्! केवल बोधिरत्न, होवे मुझ मंगल कर।।

श्री रत्नाकर गुण-गान यह, दुरित दुःख सब के हरे,
बस एक यही है प्रार्थना, मंगल मय जग को करे।।25।।

स्तुति विभाग-

भक्तामर स्तोत्र

17. नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति।
नाम्भोधरोदर - निरूद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके।।

भावार्थµ इसमें सूर्य व भगवान की तुलना करते हुए बताया है कि सूर्य शाम को अस्त हो जाता है, उसे बादल ढक लेते हैं, राहु ग्रस लेता है, किन्तु आपका महातेज इन दोषों से रहित है तथा तीनों लोक को एक साथ प्रकाशित करने वाला है।।17।।

18. नित्योदयं दलित-मोह-महांधकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कांति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशांकबिम्बम् ।।

भावार्थ- इसमें भगवान के मुखमण्डल को एक विलक्षण चन्द्रमा बताते हुए कहा है कि जो कमी लौकिक चन्द्रमा में है, वह आप में नहीं है।।18।।

19. किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभार - नम्रैः।।

भावार्थ- जब धान्य पक जाता है तब वहाँ बादलों के बरसने का कोई लाभ नहीं है, उसी प्रकार जहाँ आपके मुख रूपी चन्द्रमा से अज्ञानान्धकार नष्ट हो चुका हो वहाँ रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी (शीतलता) तथा दिन में सूर्य के प्रकाश (ताप)से क्या प्रयोजन ?।।19।।

20. ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि।।

भावार्थ- इसमें मणि व काँच के प्रकाश की तुलना करते हुए मणियों के प्रकाश को श्रेष्ट बताया गया है, उसी प्रकार भगवान में जो केवलज्ञान है वह विष्णु, महादेव आदि देवों में नहीं पाया जाता।।20।।

21. मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि।।

भावार्थ- हरि, हर आदि देवों का देखना अच्छा है क्योंकि जब हम उन्हें राग-द्वेषादि से भरे पाते हें तो आपको वीतराग पाकर हृदय में सन्तोष होता है, किन्तु आपको देख लेने पर अन्य किसी भी देव की ओर चित्त जाता ही नहीं है। अर्थात् संसार में आपसे बढ़कर अन्य कोई देव नहीं ह।।21।।

22. स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।।

भावार्थ- जिस प्रकार पूर्व दिशा ही सूर्य को उत्पन्ना कर सकती है अन्य दिशाएँ नहीं, उसी प्रकार एक मात्र आपकी माता ही आपको उत्पन्न कर सकती है अर्थात् आप जैसा पुत्र अन्य माताएँ उत्पन्न नहीं कर सकतीं।।22।।

23. त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस -
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पंथाः।।

भावार्थ- आप राग-द्वेष के मल से रहित होने से निर्मल तथा मोहान्धकार को नष्ट करने से सूर्य के समान तेजोरूप हैं, इसलिए मुनिगण आपको परमपुरुष मानते हैं। आपके प्राप्त होने से मृत्यु नहीं आती, इसलिए आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते ह।।23।।

24. त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वर - मनन्त - मनंगकेतुम्।
योगीश्वरं विदित - योग - मनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः।।

भावार्थ-आपमें भगवान के अनेक गुण विद्यमान हैं, जिसमें मुख्य रूप से आदि तीर्थंकर, सकल कर्म रहित, सर्व देवों के ईश्वर, अनन्त, कामदेव को नष्ट करने में केतुस्वरूप, योगीश्वर, अनेकरूप तथा एक केवल ज्ञान स्वरूप और कर्म मल रहित मुख्य हैं।।24।।

25. बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय - शंकरत्वात्।
धातासि धीर! शिवमार्ग - विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरूषोत्तमोऽसि।।

भावार्थ- इसमें भगवान को बुद्ध, शंकर, विधाता तथा नारायण बताया गया है। भगवान् केवलज्ञानी होने से बुद्ध, कल्याणकारी होने से शंकर, विधानकर्ता होने से विधाता तथा पुरुषों में उत्तम होने से नारायण हैं।।25।।

26. तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय,
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय।
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय।।

भावार्थ-इसमें भगवान को त्रिभुवन की पीड़ा हरने वाला, पृथ्वी तल का निर्मल भूषण, जगत् का परमेश्वर तथा संसार समुद्र को सुखाने वाला बताकर नमस्कार किया गया ह।।26।।

27. को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै -
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरूपात्त - विविधाश्रय - जातगर्वैः,
स्वप्नांतरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि।।

भावार्थ- संसार के समस्त गुण आपमें समाहित होने से कुछ भी स्थान शेष नहीं रहा, दोषों ने यह सोचकर घमण्ड से आपकी ओर नहीं देखा कि जब बहुत सारे देवों, मनुष्यों आदि ने हमें आश्रय दे दिया है तो हमें एक जिनदेव की क्या परवाह। इस प्रकार भगवान में गुण ही गुण हैं, दोषों के लिए स्वप्न में भी स्थान नहीं है।।27।।

28. उच्चैरशोक - तरूसंश्रितमुन्मयूख -
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त - तमो - वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर - पार्श्ववर्ति।।

भावार्थ- इस श्लोक में अष्ट प्रातिहार्यों में से प्रथम प्रातिहार्य 'अशोक वृक्ष' की शोभा का वर्णन है। बादलों के निकट जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब शोभा देता है, उसी प्रकार अशोक वृक्ष के नीचे आपका निर्मल शरीर शोभायमान होता है।।28।।

29. सिंहासने मणिमयूख - शिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता - वितानं,
तुंगोदयाद्रि - शिरसीव सहस्ररश्मेः।।

भावार्थ- इस श्लोक में 'स्फटिक सिंहासन' नामक दूसरे प्रातिहार्य का वर्णन है। उदयाचल पर्वत के शिखर पर जैसे सूर्य-बिम्ब शोभा देता है वैसे ही मणि जड़ित सिंहासन पर आपका शरीर शोभायमान है।।29।।

30. कुंदावदात - चलचामर - चारूशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम्।
उद्यच्छशांक - शुचिनिर्झर - वारिधार -
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्।।

भावार्थ- इस श्लोक में 'चामर' नामक तीसरे प्रातिहार्य का वर्णन है। सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के दोनों तटों पर मानों निर्मल जल वाले दो झरने झरते हों, उस प्रकार भगवान के स्वर्णसदृश शरीर पर दो उज्ज्वल चामर ढुर रहे हैं।।30।।

31. छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त -
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकर - प्रतापम्।
मुक्ताफल - प्रकरजाल - विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।।

भावार्थ- इसमें चतुर्थ 'छत्र' नामक प्रातिहार्य का वर्णन है। भगवान के तीनों छत्र पाताल, मृत्यु व देवलोक का स्वामित्व प्रकट करते हैं।।31।।

32. गंभीर - तार - रवपूरित - दिग्विभाग -
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसंगम - भूतिदक्षः।
सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषक : सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।

भावार्थ-इस श्लोक में पंचम 'देव दुन्दुभि' नामक प्रातिहार्य का वर्णन है। यह दुन्दुभि भगवान के धर्मराज होने की सर्वत्र घोषणा करती है।।32।।

सामान्य विभाग-

रात्रि भोजन-त्याग

शरीर को जीवित रखने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन कब किया जाए, इसका समय नियत होना चाहिए। सूर्यास्त के पश्चात् से लेकर सूर्योदय तक की अवधि में जो भी भोजन किया जाता है, वह रात्रि भोजन कहलाता है। जैन धर्म में रात्रि भोजन के त्याग का विशेष महत्त्व रहा है। सूर्यास्त पूर्व भोजन कर लेना जैनियों की विशिष्ट पहचान रही है। रात्रि भोजन से अनेक हानियाँ होने के कारण इसका त्याग आवश्यक है।

रात्रि-भोजन-त्याग की आवश्यकता एवं महत्त्व-

मनुष्य जन्म का सार है- आरोग्यता, निरोगता एवं स्वस्थता। कहावत भी है- पहला सुख निरोगी काया। अर्थात् निरोगी काया होना बहुत आवश्यक है। सूर्य का प्रकाश हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। सूर्य के ताप में कीटाणु निष्क्रिय बन जाते हैं। सूर्य के अस्त होने से वे पुनः सक्रिय बन जाते हैं। इससे रोग का प्रकोप पुनः प्रबल हो जाता है। रात्रि में सूर्य का ताप नहीं होने से, रोग प्रतिकारक शक्ति का अभाव होने से रोग की पीड़ा अधिक होती है। सूर्य के अस्त हो जाने से बहुत से सूक्ष्म जीव पैदा होते हैं। वे भोजन के साथ मिलकर हमारे स्वास्थ्य के लिये खतरा पैदा करते हैं। अतः आरोग्य की दृष्टि से रात्रि-भोजन हानिकारक है।

दिन में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है। सूर्य के प्रकाश में वृक्ष दिन में आक्सीजन छोड़ते हैं। यह हवा श्वासोच्छ्वास व भोजन के लिए अति उपयोगी है। ऐसे वायुमण्डल के बीच श्वास व भोजन लेने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। रात को वृक्ष कार्बनडाईआक्साइड छोड़ते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं है।

रात्रि का अंधकार विषैले जीवों के प्रसार के लिए अनुकूल होता है। कई सूक्ष्म प्राणी सूर्य के प्रकाश में ही देखे जा सकते हैं। रात्रि में लाइट जलाने से कई जीव उसकी ओर आकर्षित होते हैं, जिनके भोजन में गिरने की संभावना रहती है। इससे भोजन विषाक्त हो सकता है तथा खाने वाले की मृत्यु भी हो सकती है।

आचार्य हेमचन्द्र ने योग शास्त्र में भी रात्रि भोजन को निषिद्ध माना है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों को कमल की उपमा दी गई है, जैसे- मुख कमल, नेत्र कमल, हृदय कमल, नाभि कमल, चरण कमल आदि। हमारे शरीर रूप सरोवर में चारों ओर कमल हैं। कमल सूर्योदय होने पर ही खिलते हैं व सूर्यास्त होने पर मुरझा जाते हैं। इसी तरह हमारे शरीरस्थ कमल सूर्योदय होने पर सक्रिय होते हैं व सूर्यास्त होते ही विश्रान्ति की ओर मुड़ जाते हैं। रात्रि का समय आराम के लिए होता है।

हमारे तैजसकाय की ग्रंथियाँ सूर्य के प्रकाश में जागृत होती हैं जो आहार को पचाने में सहायक होती हैं। सूर्य-किरणें पाचन-शक्ति को बल देती हैं जिससे भोजन का पाचन आसानी से हो जाता है। रात्रि में भोजन करने से उसे पचाने हेतु अधिक समय नहीं मिल पाता, जिससे शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो

जाते हैं। सामान्यतः रात्रि में भोजन करने वाले लोगों की अपेक्षा दिन में भोजन करने वाले अधिक स्वस्थ देखे जाते हैं।

मानव, मनन-चिन्तन करने की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठतम प्राणी माना जाता है, किन्तु आज हम उसके आचरण पर दृष्टिपात करें तो उसका आचरण, उसका व्यवहार व उसके जीने का तरीका पशु से बदतर बनता जा रहा है। जानवरों की भी खाने-पीने की कुछ मर्यादाएँ होती हैं। अधिकतर पक्षी दिन में ही दाना चुगते हैं, रात्रि में नहीं। वे रात्रि में विश्राम करते हैं। पक्षियों को यह नियम किसने सिखाया? वे निर्विवाद रूप से इसका पालन कर रहे हैं। फिर मानव होकर हम क्यों नहीं करें, क्या हम पक्षियों से भी गये-गुजरे हैं?

रात को खाना अन्धा खाना है। रात में उल्लू और चमगादड़ तथा मांसाहारी प्राणी- बिल्ली, भेड़िया, चीता, शेर आदि अपना आहार ढूँढते हैं। अब हम स्वयं ही निर्णय करें कि हमें रात्रि भोजन कर निर्दयी एवं क्रूर बनना है या दिन में भोजन कर दयावान एवं सरल बनना है। आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. कहते हैं- चिड़ी, कमेड़ी, कौआ आदि पक्षी तो रात्रि में चुगने नहीं जाते, फिर दुर्लभ अमूल्य नर तनधारी मानव रात में भोजन क्यों करता है? क्या दिन में भोजन का समय नहीं है? जैसा कि कहा है-

चिड़ी कमेड़ी कागला, रात चुगन न जाय।
हे नरदेही मानवा, रात पड़या क्यों खाय।।

रात्रि भोजन राक्षसी प्रवृत्ति है। जो रात में चलते फिरते हैं, खाते-पीते हैं, उन्हें निशाचर कहा जाता है। पूज्य माधव मुनिजी कहते हैं-

रात में फिरे और खावे, मनुज वे निशिचर कहलावे।
निशाचर रावण के भाई, नहीं 'रघुवर' के अनुयायी।।

रात्रिभोजी को रावण (राक्षस) की उमपा दी गई है। वे राम के अनुयायी अर्थात् न्याय नीति के पालक मर्यादा वाले नहीं हो सकते, इसीलिए कवि ने कहा है-

सुगुरू की सीख सुनो भाई।
तजो निशिभोजन दुःखदाई।।

साधकों के लिए रात्रि भोजन त्याग-

जैन धर्म में दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन में पाँच महाव्रत के साथ छठे व्रत के रूप में रात्रि-भोजन त्याग की अनिवार्यता बताई है। छठे अध्याय में साधु के अठारह स्थानों में स्पष्ट रूप से कहा है कि रात्रि भोजन करने वाला निर्ग्रन्थपने से भ्रष्ट हो जाता है। इसी सूत्र के तीसरे अध्ययन में 52 अनाचीर्ण बताए गए हैं, इनमें पाँचवाँ अनाचीर्ण रात्रि-भोजन है। आवश्यक सूत्र में वर्णित संयमी के 125 अतिचारों में दो अतिचार रात्रि-भोजन सम्बन्धी कहे हैं। इस तरह जैन धर्म में रात्रि-भोजन का जगह-जगह निषेध किया गया है। जैन साधु तो रात्रि में भोजन करना तो दूर अन्न का दाना भी नहीं

रखते हैं। अतः रात्रि-भोजन न करना एक तरह से जैन धर्मावलम्बियों की पहचान है। ट्रेन में दिन में भोजन करते हुए देखकर दूसरा व्यक्ति समझ जाता है कि यह जैन है।

रात्रि भोजन आश्रव का कारण-

रात्रि भोजन आश्रव का कारण है। रात्रि में भोजन बनाने के उपले, लकड़ी आदि की प्रतिलेखना नहीं हो सकती, फलस्वरूप जीवों की हिंसा होती है। रात्रि भोजन बनाते और भोगते समय हिंसा की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। हिंसा (प्राणातिपात) घोर पाप है और इससे कर्मों का बन्ध होता है। प्राचीन समय में रात्रि भोजन का त्याग सच्चे और प्रामाणिक जन का लक्षण समझा जाता था। अधिकांशतः श्रमणोपासक-श्रावकों के रात्रि भोजन का त्याग होता था।

निशीथ सूत्र के ग्यारहवें उद्देशक में बताया गया है- "जो भिक्षु दिन में अशन (दाल, भात, रोटी आदि), पान (पानी), खाद्य (सूखे मेवे), स्वाद्य (मुखवास) ग्रहण करके दूसरे दिन भोगे, दूसरों को भोगावे, भोगने वाले का भला जाने। जो साधु रात्रि में असनादि लेकर दिन में भोगवावे और अन्य भोगने वाले को भला जाने तो चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है। रात्रिभोजन हिंसापूर्ण और पापजनक है। अतः भगवान् फरमाते हैं-

अत्थं गयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए ।।
द.अ.8 गा.28

सूर्यास्त होने पर, सूर्योदय तक साधक को आहारादि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए।

वर्तमान स्थिति-

वर्तमान में हम हमारी इस पहचान को खोते जा रहे हैं। रात्रि भोजन का प्रचलन बढ़ता जा रहा हैं। इसके समर्थन में कई तर्क दिये जाते हैं। महानगरों में घर से व्यवसाय-स्थलों की दूरियाँ अधिक होती हैं, इस कारण व्यक्ति घर में रात को ही पहुँच पाते हैं। उन्हें दफ्तर में देर तक रुकना होता है, इस कारण दिन में भोजन संभव नहीं है। किन्तु इन तर्कों में कोई दम नहीं है। यदि हम दृढ़ संकल्पी हो तो रास्ता सबका निकलता है। हम यदि दिन में भोजन करने का संकल्प कर लें तो इसके पालन में कोई परेशानी नहीं है। मन को मजबूत करने की आवश्यकता है।

रात्रि-भोजन त्याग से होने वाले लाभ -

1. आहार पर संयम होता है।
2. मनोबल व आत्मबल बढ़ता है।
3. अनेक रोगों से छुटकारा मिलता है। व स्वास्थ्य ठीक रहता है।
4. अनावश्यक जीव-हिंसा से बचाव होता है व अनेक जीवों को अभयदान मिलता है।
5. सहज रूप में वर्ष में छः मास की तपस्या का लाभ होता है।

6. स्वयं को तथा धर्मपत्नी या गृहणी को भी रात्रि में धर्मसाधना हेतु समय उपलब्ध हो जाता है।
7. दिन में भोजन बनने से श्रावक-श्राविकाओं को अपने बारहवें अतिथि-संविभाग व्रत-पालन करने का सहज ही सुअवसर प्राप्त होता है।
8. दिन में भोजन करने से भोजन को पचाने हेतु पर्याप्त समय मिल जाता है।
9. दिन में भोजन का नियम होने से शादी-विवाह आदि में रात्रि भोजों पर होने वाले अपव्यय से बचा जा सकता है।
10. रात्रि भोजन न करना जैनियों की मोटी पहचान है, अतः पहचान को कायम रखने के लिए रात्रि भोजन त्याग आवश्यक है।

उपसंहार–

जैन धर्म के अनुयायी के लिए तो रात्रि-भोजन का त्याग अनिवार्य एवं श्रेष्ठ है ही, जैनेतर लोग भी इसे श्रेष्ठ बताते हैं तथा कई जैनेतर भी इसका पालन करते देखे जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से भी सूर्यास्त से पूर्व भोजन उत्तम बताया गया है। अतः जैन धर्म में निर्दिष्ट आहार-व्यवस्था हर प्रकार से उत्तम है। रात्रि-भोजन-त्याग से आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ हमारे आरोग्य की भी रक्षा होती है, शरीर स्वस्थ रहता है, विचार पवित्र बनते हैं तथा मन व आत्मा निर्मल बनती है। रात्रि भोजन से हानियाँ व इसके त्याग से होने वाले लाभों को दृष्टिगत रखते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि रात्रि भोजन त्याग अत्यन्त लाभदायक है। दिन के रहते भोजन करने से जल्दी सोया जा सकता है तथा जल्दी उठा जा सकता है, जो स्वस्थ, समृद्ध व बुद्धिमान बनने के लिए आवश्यक है। अंग्रेजी में कहावत भी है–

Early to bed – Erly to rise
Makes a man Healthy, Wealthy and Wise

अतः जो व्यक्ति रात्रि भोजन नहीं करते हैं, वे अपने इस नियम का पालन दृढ़ता से करते रहें। जो रात्रि भोजन करते हैं वे संकल्प एवं दृढ़ निश्चय करके इसका त्याग करें। इसी में सबका हित निहित है।

अस्वाध्याय के 34 कारण

"अस्वाध्याय का अर्थ यहाँ पर स्वाध्याय का निषेध नहीं, किन्तु जिस क्षेत्र और काल में स्वाध्याय का वर्जन किया जाता है, वह अपेक्षित है। इस दृष्टि से अस्वाध्याय दो प्रकार का होता है। 1. आत्म समुत्थ। 2. पर समुत्थ। अपने शरीर में रक्त आदि से अस्वाध्याय का जो कारण होता है, उसे आत्म समुत्थ कहते हैं। तथा बाहर के अन्य मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी अशुचि के कारण अथवा आकाशादि के कारण जो अस्वाध्याय होता है, उसे पर समुत्थ कहते हैं। स्थानांग और आवश्यक निर्युक्ति आदि में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। वहाँ पर दस औदारिक शरीर सम्बन्धी, दस आकाश सम्बन्धी, पाँच पूर्णिमा तथा पाँच महाप्रतिपदा और चार सन्ध्याएँ कुल मिलाकर 34 अस्वाध्याय के भेद बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं-

दस आकाश सम्बन्धी-

1. **उल्कापात-** तारे का टूटना, उल्कापात में एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।
2. **दिग्दाह-** दिशा में जलते हुए बड़े नगर की तरह ऊपर की ओर प्रकाश दिखे और नीचे अन्धकार प्रतीत हो, उसे दिग्दाह कहते हैं। इसमें भी एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।
3. **गर्जित-** मेघ का गर्जन होने पर दो प्रहर का अस्वाध्याय होता है।
4. **असमय में गर्जन-** बिजली चमकने पर एक प्रहर तक अस्वाध्याय माना जाता है। आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक वर्षा ऋतु में गर्जित और विद्युत् में अस्वाध्याय नहीं होता है।
5. **निर्घात-** मेघ के होने या न होने की स्थिति में व्यन्तरकृत कड़कने की आवाज हो तो एक अहोरात्रि का अस्वाध्याय माना जाता है।
6. **यूपक-** शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को चन्द्रमा की प्रभा का मिल जाना यूपक कहलाता है। इन दिनों में चन्द्रप्रभा से आवृत्त होने के कारण संध्या का बीतना मालुम नही होता। इसलिये इन तीनों दिन प्रथम प्रहर में अस्वाध्याय माना जाता है।
7. **धूमिका-** कार्तिक से माघ मास तक मेघ का गर्भ जमता है, इस समय जो धूम वर्ण की सूक्ष्म जल रूप धूवर पड़ती है, वह धूमिका कहलाती है। जब तक धूमिका रहती हैं, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।
8. **मिहिका-** शीतकाल में सफेद वर्ण की सूक्ष्म अप्काय रूप धूवर गिरती है, उसे मिहिका कहते हैं। जब तक धूवर गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।
9. **यक्षादीप्त-** कभी-कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा रह-रह कर प्रकाश होता हो, उसे यक्षादीप्त कहते हैं, जब तक वह साफ दिखाई पड़े तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।

10. रजोद्‌घात- वायु के कारण आकाश में चारों ओर जो धूल छा जाती है, उसे रजोद्‌घात कहते हैं, जब तक यह रहे तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।

दस औदारिक शरीर सम्बन्धी-

(11-13) तिर्यञ्च के हाड़, मांस और रक्त साठ हाथ के अन्दर हो तथा साठ हाथ के भीतर बिल्ली आदि ने चूहे को मारा हो तो एक अहोरात्रि का अस्वाध्याय माना गया है। यदि मनुष्य सम्बन्धी हाड़-मांस और रक्त आदि हो तो सौ हाथ दूर तक अस्वाध्याय माना गया है। काल की अपेक्षा टीकाकारों ने एक अहोरात्रि का समय माना है, किन्तु वर्तमान में कलेवर हटाकर स्थान को धोकर साफ कर लेने के बाद अस्वाध्याय नहीं माना जाता है। बहिरंग के ऋतुधर्म का तीन दिन और बालक-बालिका के जन्म का क्रमशः सात और आठ दिन का अस्वाध्याय माना जाता है।

14. अशुचि- मल, मूत्र और गटर आदि स्वाध्याय स्थल के पास हो अथवा मलादि दृष्टिगोचर हो तो वहाँ अस्वाध्याय माना जाता है।

15. श्मशान- श्मशान के चारों और सौ-सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना जाता है।

16. चन्द्रग्रहण- चन्द्रग्रहण में कम से कम आठ और अधिक से अधिक बारह प्रहर तक अस्वाध्याय माना जाता है। यदि उदित चन्द्र ग्रसित हो तो आचार्यो ने चार प्रहर रात के व चार प्रहर दिन के, इस प्रकार कुल आठ प्रहर का अस्वाध्याय माना है।

17. सूर्यग्रहण- सूर्यग्रहण का कम से कम आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर तक अस्वाध्याय माना जाता है। यदि पूरा ग्रहण हो तो सोलह प्रहर का अस्वाध्याय माना जाता है।

18. पतन- राजा के निधन-राजा या उत्तराधिकारी की मृत्यु होने पर जब तक दूसरा राजा सत्तारूढ़ न हो तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।

19. राजव्युद्‌ग्रह- राजाओं में परस्पर संग्राम होता रहे, जब तक वहाँ शान्ति न हो, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।

20. औदारिक शरीर- उपाश्रय आदि में तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का कलेवर पड़ा हो तो साठ हाथ तथा यदि मनुष्य का कलेवर हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना जाता है।

21-25. पाँच महापूर्णिमा- 1. आषाढ़ी पूर्णिमा 2. भादवा पूर्णिमा 3. आश्विनी पूर्णिमा 4. कार्तिकी पूर्णिमा और 5. चैत्र की पूर्णिमा।

26-30. पाँच प्रतिपदा- 1. श्रावण कृष्णा प्रतिपदा 2. कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा 3. मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा 4. आसोज कृष्णा प्रतिपदा 5. वैशाख कृष्णा प्रतिपदा।

इन दिनों में इन्द्र महोत्सव होते हैं। अतः इन दस दिनों में अस्वाध्याय माना गया है।

31-34. चार संध्या-

(1) सूर्योदय के 36 मिनट पहले तथा 12 मिनट बाद में,

(2) सूर्यास्त के 12 मिनट पहले तथा 36 मिनट बाद में,

(3) मध्याह्न (दिन का मध्यकाल) में 24 मिनट पहले तथा 24 मिनट बाद में,

(4) मध्यरात्रि (रात्रि का मध्यकाल) में 24 मिनट पहले तथा 24 मिनट बाद में।

उक्त चारों संध्याओं में अस्वाध्याय माना जाता है।

आगम - अर्थ एवं विशेषताएँ

जैन धर्म के प्रतिपादक शास्त्रों को जैनागम कहते हैं। जैनागम जिनप्रणीत एवं गणधर द्वारा सूत्र रूप से ग्रथित होते हैं। इन्हें गणिपिटक नाम से भी जाना जाता है। इनका एक नाम द्वादशांगी भी है।

आगम नाम क्यों?

जब तीर्थंकरों को केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त हो जाता है, तब वे धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। अपनी साक्षात् अनुभूतियों का अर्थ रूप में उपदेश देते हैं। जिसे सुनकर 'गण' लब्धि के धारक गणधर शासन-हित के लिये उसे सूत्र रूप में गूंथते हैं, वे सूत्र आगम कहलाते हैं। जैसा कि कहा है-

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ।।

आगम का अर्थ-

आ = आप्त (सर्वज्ञ) पुरुषों द्वारा कथित
ग = गणधरों द्वारा ग्रथित
म = मुनियों द्वारा आचरित

जिन शास्त्रों के माध्यम से भव्य जीवों में ज्ञान का आगमन हो, अथवा भव्य जीवों को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र रूप मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति हो, उन्हें आगम कहते हैं।

आगम ज्ञान की आवश्यकता-

वर्तमान भौतिक युग में विलासिता के साधनों में वृद्धि हो रही है। चारों ओर बच्चों के चरित्र को दूषित करने वाले अश्लील व जासूसी उपन्यास तथा फिल्मी पत्रिकाओं आदि का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। ऐसे विषम समय में भोगवादी संस्कृति की ओर बढ़ती हुई हमारी भावी पीढ़ी में संस्कारों का वपन करने तथा उनके जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए आगम ज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं उनके नियमित स्वाध्याय की महती आवश्यकता है। यदि हम आगम के अध्ययन-अध्यापन में प्रवृत्त होंगे तो हमारी भावी पीढ़ी का भी इस ओर झुकाव होगा, जिससे सुसंस्कृत समाज का निर्माण होगा तथा हम मानव जीवन के मूल्य एवं चरम लक्ष्य को पहचान सकेंगे।

आगम के लक्षण-

1. ये आप्त पुरूषों के वचन हैं।
2. ये वीतराग द्वारा प्रणीत होने से सर्वजीवों के लिए एकांत हितकर होते हैं।
3. आगम त्रिकाल-सत्य सिद्धान्तों का संग्रह हैं।
4. आगम स्याद्वाद सिद्धान्त से अनुप्राणित (ओतप्रोत) होते हैं।

आगम की विशेषताएँ-

1. जैनागम प्राकृत (अर्द्धमागधी) भाषा में रचित हैं।

2. जिन-प्रणीत होने से सम्पूर्ण आगम मंगलाचरण रूप हैं।
3. जैनागम गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं (रूप, प्रकार) में हैं। इनके पद्य को 'गाथा' कहते हैं।
4. कुछ आगम सूत्रात्मक शैली में रचित हैं।
5. कुछ आगमों का निरूपण प्रश्नोत्तर शैली में किया गया है, यथा - भगवती सूत्र।
6. इनमें विभिन्न विषयों का वर्गीकरण कर एकाधिक स्थान पर एक विषय को स्पष्ट किया गया है।
7. जैनागम द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग इन चार अनुयोगों में व्यवस्थित हैं।
8. अर्थ (भाव) रूप से आगम अनादि अनन्त हैं, जबकि सूत्र (शब्द) रूप से सादि-सान्त हैं।

आगम के रचनाकार–

जैनागम तीर्थंकरों की अर्थरूप वाणी का गणधरों द्वारा सूत्र रूप में ग्रन्थन है। इस प्रकार जैनागम या द्वादशांगी के रचनाकार गणधर हैं।

वर्तमान जैनागम भगवान् महावीर की अर्थ रूप वाणी का आर्य सुधर्मा द्वारा सूत्र रूप में ग्रन्थन है। द्वादशांगी आर्य सुधर्मा की रचना है तथा शेष आगम उनके आधार पर श्रुतकेवली एवं दशपूर्वधरों की रचना हैं। वर्तमान आगमों को लिपिबद्ध करने का श्रेय एक पूर्वधारी आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को है।

आगम के भेद–

आगम के मुख्य रूप से तीन भेद होते हैं-

1. **सूत्रागम (सुत्तागमे)**– सूत्र रूप से गणधरों द्वारा रचित आगम सूत्रागम कहलाते हैं।
2. **अर्थागम (अत्थागमे)**– अर्थ रूप में रचित आगम अर्थागम कहलाते हैं। तीर्थंकर भगवान् अर्धमागधी भाषा में जो उपदेश देते हैं, वह अर्थागम है तथा सूत्रागमों के हिन्दी आदि भाषाओं में जो अनुवाद किये गये हैं, वे भी अर्थागम के नाम से कहे जाते हैं।
3. **तदुभयागम**– सूत्र व अर्थ दोनों रूप में रचित आगम तदुभयागम कहलाते हैं।

दूसरी अपेक्षा से आगम के तीन प्रकार अनुयोगद्वार सूत्र के ज्ञान प्रमाणाधिकार में इस प्रकार बतलाये हैं- **(1) आत्मागम, (2) अनन्तरागम,** और **(3) परम्परागम।**

तीर्थंकर द्वारा कथित अर्थ उनके स्वयं के लिये **आत्मागम** कहलाते हैं। गणधर रचित सूत्र रूप आगम गणधर के लिए आत्मागम है और अर्थ रूप आगम उनके लिये **अनन्तरागम** है। गणधरों के शिष्यों के लिये सूत्र-आगम अनन्तरागम तथा अर्थ आगम **परम्परागम** है। पश्चात्वर्ती आचार्यों, शिष्यों तथा प्रशिष्यों के लिये सूत्र और अर्थ रूप दोनों ही आगम परम्परागम कहलाते हैं।

आगमों की संख्या–

गणधरों द्वारा ग्रथित मूल आगम 12 हैं। जिनमें से दृष्टिवाद का लोप होने से 11 अंग, 12 उपांग, 10 प्रकीर्णक, 6 छेद सूत्र, 4 मूल सूत्र एवं 2 चूलिका इस प्रकार कुल 45 आगम भी बतलाये गये हैं। नंदीसूत्र में कालिक एवं उत्कालिक सूत्रों के विवेचन में आगमों की संख्या 75 मानी गई है। लेकिन वर्तमान में जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी एवं तेरापंथ सम्प्रदायों में 11 अंग, 12 उपांग, 4 छेद, 4 मूल, 1 आवश्यक सूत्र, ये 32 आगम प्रामाणिक रूप से माने जाते हैं।

(अ) **अंग–** जिन-प्रणीत अर्थरूप वाणी को गणधरों द्वारा सूत्र रूप में ग्रन्थन किया जाता है। उनके द्वारा रचित शास्त्रों को अंग सूत्र कहते हैं। 11 अंग इस प्रकार हैं– 1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. भगवती 6. ज्ञाताधर्म कथा 7. उपासक दशा 8. अन्तकृत दशा 9. अनुत्तरोपपातिक 10. प्रश्न व्याकरण 11. विपाक सूत्र।

(ब) **उपांग–** अंगों में वर्णित विषयों का विस्तार पूर्वक विवेचन करने वाले शास्त्र उपांग कहलाते हैं। उपांग 12 हैं, यथा– 1. औपपातिक 2. राजप्रश्नीय 3. जीवाजीवाभिगम 4. प्रज्ञापना 5. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 6. चन्द्र प्रज्ञप्ति 7. सूर प्रज्ञप्ति 8. कल्पिका (निरयावलिका) 9. कल्पावतंसिका 10. पुष्पिका 11. पुष्पचूलिका 12. वृष्णिदशा।

(स) **छेद सूत्र–** जिनमें साधुओं के सबल दोष एवं प्रायश्चित्त आदि का विधान हो, उन्हें छेद सूत्र कहते हैं। छेद सूत्र 4 हैं– 1. दशाश्रुतस्कन्ध 2. बृहत्कल्प 3. व्यवहार सूत्र, और 4. निशीथ सूत्र।

(द) **मूल सूत्र–** आत्मा के मूल गुण (सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप) के प्रतिपादक होने से इन्हें मूल सूत्र कहते हैं। इनके पठन-पाठन से धर्म रूपी वृक्ष का मूल सम्यक्त्व दृढ़ होता है, इसलिये भी इन्हें मूल सूत्र कहते हैं। मूल सूत्र चार हैं– 1. दशवैकालिक 2. उत्तराध्ययन 3. नंदी और 4. अनुयोगद्वार सूत्र।

(य) **आवश्यक सूत्र–** अवश्य करणीय या पठनीय होने से इसे आवश्यक सूत्र कहते हैं। इसमें छः अवश्य करणीय कार्यों का वर्णन होने से भी इसे आवश्यक सूत्र कहते हैं।

आगम के ज्ञान एवं स्वाध्याय से लाभ–

1. सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति होती है।
2. आगम, स्वाध्याय रूप तप होने से कर्मों की निर्जरा होती है।
3. काम भोगों से विरति होती है, त्याग-मार्ग में प्रवृत्ति होती है।
4. कषायों का उपशमन होने से मन शान्त एवं स्वच्छ होता है।
5. अपूर्व सुख एवं शान्ति का अनुभव होता है।
6. संसार परीत होता है, आत्मा निर्मल तथा विशुद्ध होती है।

पौषध-व्रत का स्वरूप एवं भेद

पौषध का स्वरूप :

पौषध-व्रत श्रावक का ग्यारहवाँ व्रत तथा तीसरा शिक्षा व्रत है। पौषध का अर्थ है- धर्म की पुष्टि व पौषधोपवास का तात्पर्य है- आत्मा के समीप रहना। अर्थात् पौषध-व्रत वह शोधक क्रिया है जिसके द्वारा साधक संसारी प्रपंचों को छोड़कर, आत्मा को निर्मल करने की साधना में रत होता है, यानी आत्मा पर जो कर्म मल का लेप है, उसकी विशुद्धि करता है। पौषध में चार प्रकार के निम्न त्याग, दो करण तीन योग से होते हैं-

1. आहार- चारों प्रकार के आहार का त्याग।
2. शरीर संस्कार- स्नान, विलेपन, पुष्पमाला एवं गहनों (आभूषणों) का त्याग।
3. अब्रह्म- मैथुन सेवन का त्याग।
4. सावद्ययोग- सभी पापकारी प्रवृत्तियों का त्याग।

पौषध के प्रकार :

पौषध-व्रत, प्रतिपूर्ण पौषध व देश पौषध रूप में होता है और प्रचलित धारणा के अनुसार निम्न तीन प्रकार से इसकी आराधना की जाती है-

1. प्रतिपूर्ण पौषध- जिसमें उपर्युक्त चारों प्रकार के त्याग पूर्ण अहोरात्रि - दिन रात (आठ प्रहर) के लिये होते हैं।

2. ग्यारहवाँ पौषध- प्रतिपूर्ण पौषध में केवल काल मर्यादा कम करके जो पौषध किया जाता है, इसको 'ग्यारहवाँ पौषध' की संज्ञा दी गई है। यह पौषध पाँच प्रहर से कम नहीं होना चाहिये। कम से कम सात प्रहर के लिए जो दयाव्रत की आराधना की जाती हे, उसे भी ग्यारहवें पौषध में मानना चाहिए।

3. दसवाँ पौषध- उपर्युक्त त्यागों में काल मर्यादा की कमी के साथ प्रासुक जल का सेवन कर जो सायंकाल पौषध किया जाता है, वह पौषध 'दसवाँ पौषध' के नाम से कहा जाता है। टीकाकारों ने इसे देश पौषध के नाम से कहा है।

प्रथम कोटि के पौषध से दूसरे प्रकार के पौषध में काल मर्यादा की कमी है और तीसरे में काल मर्यादा के साथ आहार में भी देश त्याग होता है। अर्थात् प्रथम से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में त्याग के क्षेत्र में उत्तरोत्तर न्यूनता है। इन तीनों में एक दूसरे की विशिष्टता बतलाने के लिये अलग-अलग नामकरण किया गया है, ताकि साधकों को अपने-अपने अंगीकार किये हुए पौषध व्रतों की न्यूनाधिकता मालूम होती रहे और वे विकास की ओर अग्रसर हो सकें।

पौषध ग्रहण करने के पाठ :

(अ) प्रतिपूर्ण पौषध (अष्ट प्रहर पौषध)- प्रतिपूर्ण पौषध व्रत पच्चक्खामि-सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि- सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला-वण्णग- विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज- जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं

पज्जुवासामि दुविहं-तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा, कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

(ब) ग्यारहवाँ पौषध– ग्यारहवाँ पौषध व्रत पच्चक्खामि- सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि-सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला-वण्णग- विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण- सूर्योदय तक, पज्जुवासामि दुविहं-तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

(स) दसवाँ पौषध– दसवाँ पौषध व्रत असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण। द्रव्य से- सर्व सावद्य योगों का त्याग, क्षेत्र से- सम्पूर्ण लोक में, काल से- सूर्योदय तक, भाव से- दो करण तीन योग से, उपयोग सहित तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

दसवाँ पौषध व्रत का पच्चक्खाण कुछ श्रावक दसवाँ-देशावगासिक व्रत से करते हैं, वह अनुकूल नहीं है। क्योंकि इसमें केवल मर्यादित क्षेत्र के बाहर के आश्रव-सेवन का त्याग होता है, जबकि दसवें पौषध व्रत में मर्यादित क्षेत्र के बाहर और भीतर सम्पूर्ण क्षेत्र में त्रस-स्थावर सभी जीवों के हिंसा और अन्य सभी आश्रव सेवन का त्याग होता है।

तीनों प्रकार के पौषध ग्यारहवें व्रत के अतिचारों के पाठ से ही पारे जाते हैं। पौषध निम्नानुसार पारना चाहिए-

सामायिक पारने के समान ही क्रम से सभी पाठ बोलना। जैसे- नवकार मन्त्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी, एक लोगस्स का काउस्सग्ग, काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ, एक लोगस्स, दो नमोत्थुणं बोलना। तत्पश्चात् निम्नांकित पाठ बोलना चाहिएः-

पौषध व्रत पारने का पाठ :

प्रतिपूर्ण पौषध/ग्यारहवाँ पौषध/दसवाँ पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. पौषध में शय्या संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार पासवण की भूमि को न देखी हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो, 5. उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

अन्त में तीन नवकार मन्त्र बोलना चाहिए।

पौषध के दोष :

पौषध व्रत की विशुद्ध आराधना करने हेतु निम्नांकित 18 दोषों से बचना अनिवार्य हैं-

1. पौषध के निमित्त ठूँस-ठूँस कर आहार करे।
2. पौषध के निमित्त पहली रात्रि में मैथुन सेवे।
3. पौषध के निमित्त नख, केश आदि का संस्कार करे।
4. पौषध के निमित्त शरीर की सुश्रूषा करे।

5. पौषध के निमित्त आभूषण पहने।
6. पौषध के निमित्त सरस आहार करे।
7. पौषध में अव्रती से वैयावृत्त्य करावे।
8. पौषध में शरीर का मैल उतारे।
9. पौषध में बिना पूँजे शरीर खुजलावे।
10. पौषध में अकाल में निद्रा लेवे।
11. पौषध में वस्त्र धोवे या धुलवावे।
12. पौषध में प्रहर रात्रि बीतने से पहले सोवे व रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर धर्म जागरण नहीं करे।
13. पौषध में बिना पूँजे घूमे और परठे।
14. पौषध में निन्दा, विकथा, हँसी-मजाक करे।
15. पौषध में स्वयं डरे और दूसरों को डरावे।
16. पौषध में कलह करे।
17. पौषध में संसारी बातों की चर्चा करे।
18. पौषध में खुले मुँह अयतना से बोले। काका, मामा आदि सम्बन्धियों को इन शब्दों से सम्बोधित करे।

उपर्युक्त 18 दोषों में से प्रथम छः दोष पौषध करने से पहले दिन लगते हैं व शेष पौषध के दिन में।

आत्म-शान्ति का पोषण करने के कारण इस व्रत का नाम पौषध है। पौषध की क्रिया साधुता के जीवन के नजदीक ले जाने वाली है। पौषध का उत्तम प्रकार से पालन करने वाला अपने जीवन को प्रशस्त बना लेता है।

कक्षा : छठी – जैन धर्म विशारद (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- **10x1 = (10)**

(a) अन्तगड़ सूत्र में भगवान महावीर के शासन की कितनी आत्माओं का वर्णन है-

(क) 51 (ख) 57

(ग) 33 (घ) 39 (घ)

(b) थलचर कौनसी नरक तक जा सकता है-

(क) दूसरी (ख) तीसरी

(ग) चौथी (घ) पाँचवीं (ग)

(c) कौनसी नरक से निकलने वाला साधु नहीं बन सकता है -

(क) छठी (ख) सातवीं

(ग) छठी-सातवीं (घ) कोई नहीं (ग)

(d) नो गर्भज की आगति है-

(क) 395 (ख) 285

(ग) 363 (घ) 329 (घ)

(e) हरिवास की गति है-

(क) 30 (ख) 40

(ग) 126 (घ) 124 (ग)

(f) जीवों का भवसिद्धिपना है-

(क) स्वभाव से (ख) परिणाम से

(ग) दोनों से (घ) कोई नहीं (क)

(g) अंतगड़ सूत्र में वर्णित साध्वियों ने अध्ययन किया -

(क) 11 अंग (ख) 12 अंग

(ग) 14 पूर्व (घ) 10 पूर्व (क)

(h) दशवैकालिक का श्रामण्यपूर्वक अध्ययन है-

(क) पहला (ख) दूसरा

(ग) तीसरा (घ) चौथा (ख)

(i) अस्वाध्याय के 34 कारणों में आकाश सम्बंधी है-

(क) 10 (ख) 5

(ग) 4 (घ) कोई नहीं (क)

(j) उत्तराध्ययन सूत्र है-

(क) आवश्यक सूत्र (ख)मूल सूत्र

(ग) अंग सूत्र (घ) उपांग सूत्र (ख)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) पौषध के निमित्त आभूषण पहन सकते हैं। (नहीं)

(b) ग्यारहवाँ पौषध देश पौषध है। (हाँ)

(c) आत्मागम भी आगम का एक भेद है। (हाँ)

(d) मिहिका सूक्ष्म अप्काय है। (हाँ)

(e) इन्द्र महोत्सव के दिनों में स्वाध्याय करना चाहिए। (नहीं)

(f) सातवीं नरक में सिर्फ तिर्यञ्च आते हैं। (नहीं)

(g) मनुष्य मरकर तेउकाय, वायुकाय के जीव नहीं बनते हैं। (नहीं)

(h) युगलिक को छोड़ शेष मनुष्य एवं तिर्यञ्च 179 की लड़ में हैं। (हाँ)

(i) अंतगड़ में वर्णित सेठ सुदर्शन ने दर्शन आराधना की। (हाँ)

(j) अंतगड़ में वर्णित भगवान महावीर के शासन की सभी आत्माएँ विपुलगिरि पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुई। (नहीं)

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं उत्कृष्ट मंगल हूँ। श्रुतचारित्र रूप धर्म

(b) मैं वमन किये विष को पुनः ग्रहण नहीं करता हूँ। अगंधन कुल का सर्प

(c) मुझ श्रमणोपासिका ने भगवान महावीर से अनेक प्रश्न किये। जयंती बाई

(d) हम ऐसे मनुष्य हैं जो अपर्याप्त अवस्था में अमर हैं। युगलिक मनुष्य/अकर्मभूमिज मनुष्य

(e) मेरी आगति 108 की है। केवली

(f) मेरी गति 535 की है। माण्डलिक राजा

(g) मैं अर्द्धमागधी भाषा में रचित हूँ। जैन आगम

(h) मेरे तीसरे अध्ययन में 52 अनाचीर्ण बताये गये हैं। दशवैकालिक सूत्र

(i) हम ऐसे सूत्र हैं जिनमें प्रायश्चित्त आदि का विधान है। छेद सूत्र

(j) मेरी आराधना से आत्म-शांति का पोषण होता है। पौषध व्रत

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। **14x2=(28)**

(a) **'संसार.................दिया।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया,

जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया।

(b) **'मैं यत्न.................बच सकता नहीं।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म में करता नहीं,

दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं।

(c) **'नरजन्म.................रोता रहा।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ नर-जन्म पाकर भी वृथा ही, मैं उसे खोता रहा,

मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा।

(d) **'माता-पिता.................लीलावती।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ माता पिता के सामने, बोली सुनाकर तोतली,

करता नहीं क्या अज्ञ बालक, बाल्य-वश लीलावली?

(e) **यूपक का अर्थ लिखिए।**

उ यूपक- शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को चन्द्रमा की प्रभा का मिल जाना यूपक कहलाता है।

(f) **आगम स्वाध्याय से प्राप्त दो लाभ लिखिए।**

उ 1 सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति होती है।

2 आगम, स्वाध्याय रूप तप होने से कर्मों की निर्जरा होती है।

3 काम भोगों से विरति होती है, त्याग-मार्ग में प्रवृत्ति होती है।

4 कषाय का उपशमन होने से मन शांत एवं स्वच्छ होता है।

5 अपूर्व सुख एवं शांति का अनुभव होता है।

6 संसार परीत होता है, आत्मा निर्मल तथा विशुद्धहोती है।

(नोट- इनमें से कोई दो)

(g) **कौन-कौन से युगलिक मनुष्य कौन-कौन से देवलोक में उत्पन्न होते हैं ?**

उ देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक - पहले किल्विषिक तक

हरिवास-रम्यक्वास के युगलिक - दूसरे देवलोक तक

हेमवत-हैरण्यवत के युगलिक - पहले देवलोक तक

56 अन्तर्द्वीप के युगलिक - भवनपति एवं वाणव्यंतर तक उत्पन्न होते हैं।

(h) **जलचर की गति समझाकर लिखिए।**

उ जलचर की गति 527 की- (नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान पर्यन्त के 18 जाति के देवता के पर्याप्ता और अपर्याप्ता, इन 36 भेदों (जीवों) को 563 में से छोड़कर)।

(I) **साधुजी की गति विवेचन सहित लिखिए।**

उ गति- 70 जाति के देवता (12 देवलोक, 9 लोकान्तिक, 9 ग्रैवेयक,5 अनुत्तर विमान इन 35 के पर्याप्त और अपर्याप्त) अथवा मोक्ष ।

(j) **'अप्पा कत्ता.................सुप्पट्ठिओ।।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।

अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुप्पट्ठिओ ।।

(k) **'कोहो.................विणासणो।।' रिक्त स्थान को पूर्ण कीजिए।**

उ कोहो पीइं पणासेइ, मणो विणयणासणो।

माया मित्ताणि णासेइ, लोहो सव्व विणासणो।।

(l) **अंतगड़ में वर्णित आत्माओं को कितने-कितने दिनों का संथारा आया ?**

उ 1 गजसुकुमालजी के संथारा नहीं (व्यवहार रूप से)

2 अर्जुन मालाकार के संथारा 15 दिन का

3 अन्य 88 आत्माओं के संथारा 30-30 दिन का।

(m) **अंतगड़ सूत्र में उल्लेखित कोई चार तपों के नाम लिखिए।**

उ 1 भिक्षु प्रतिमाएँ, 2 गुणरत्न संवत्सर, 3 रत्नावली, 4 कनकावली,

5 लघुसिंह निष्क्रीड़ित, 6 महासिंह निष्क्रीड़ित, 7 लघुसर्वतोभद्र, 8 महासर्वतो भद्र,

9 आयम्बिल वर्धमान तप, 10 मुक्तावली तप। (नोट- इनमें से कोई चार तप के नाम)

(n) **अंतगड़ में वर्णित भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान महावीर के शासन की साध्वी प्रमुखा का नाम लिखिए।**

उ भगवान अरिष्टनेमि की - यक्षिणी

.भगवान महावीर की - चंदनबाला।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) **''वयं च.................भमरा जहा।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ।

अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा।।

भावार्थ- शिष्य गुरुदेव के चरणों में यह प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस प्रकार भँवरा फूलों से रस लेने में किसी को कष्ट नहीं पहूँचाता है। हम भी ऐसी रीति अपनायेंगे, जिससे की किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। फूलों पर भँवरों की तरह गृहस्थ के यहाँ उनके उपभोग के लिए बनाये आहार में से ही थोड़ा-थोड़ा हम ग्रहण करेंगे।

(b) **''कहं नु................वसंगओ।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।

पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसंगओ।।

भावार्थ- जो साधक कामनाओं का निवारण नहीं कर सकता, वह श्रमण धर्म का पालन कैसे करेगा?क्योंकि कामनाओं के आधीन पुरुष संकल्प विकल्प के वशीभूत होकर, पग-पग पर खेद प्राप्त करता है।

(c) **''अप्पा चेव.................परत्थ य।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।

अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।।

अर्थ- अपनी आत्मा का ही दमन (वश में करना, संयमित करना) करना चाहिये, क्योंकि आत्मा का दमन ही कठिन है। दमन की गयी आत्मा ही इस लोक तथा परलोक दोनों में सुखी होती है।

(d) **''जो पुव्वरत्तावरत्त.................समायरामि।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ जो पुव्वरत्तावरत्त काले,संपेहए अप्पगमप्पएणं।

किं मे कडं, कि च मे किच्चसेसं, कि सक्कणिज्जं ण समायरामि

अर्थ- साधक रात्रि के प्रथम और अंतिम प्रहर में अपना आत्मालोचन एवं आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने-आपको सम्यक् प्रकार से देखे, सोचे कि मैने क्या कार्य किया है, मेरे लिये क्या कार्य करना

शेष है और वह कौनसा कार्य है जिसे में कर सकता हूँ, परन्तु प्रमादवश नहीं कर पाता हूँ।

(e) **''आयावयाहि.................संपराए।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ आयावयाहि चय सोगमल्लं, कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं।

छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए।।

उ भावार्थ-शीत और गर्मी की आतापना लेते हुए सुकुमारता का परित्याग करो एवं कामनाओं का निवारण करो तो दुःख दूर हुआ समझो। द्वेष का छेदन करो और राग को अलग करो, ऐसा करने से संसार में सुखी हो जाओगे।

(f) **''जइ तं काहिसि.................भविस्ससि।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।

वायविद्धो व्व हडो, अट्ठि-अप्पा भविस्ससि।।

भावार्थ- हे मुने! यदि तू जिन-जिन नारियों को देखेगा और उन पर विकारी भाव करेगा तो तू तेज हवा से कम्पित हड वृक्ष की तरह अस्थिर आत्मा वाला हो जाएगा।

(g) **श्रौत्रेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बान्धता है ?**

उ आयुष्य कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ़ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मंद रस वाली हो तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं भी बांधता है। असातावेदनीय कर्म बार-बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

(h) **जीव सोते हुए अच्छे कैसे ? लिखिए।**

उ जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनंद मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख नहीं दे पाते, यावत् परितापना नहीं उपजाते, अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे है।

(i) **18 पापों के सेवन से होने वाली तीन हानियाँ लिखिए।**

उ 1 जीव भारी बनता है। 2 जीव संसार बढ़ाता है।

3 जीव कर्मों की स्थिति बढ़ाता है। 4 जीव संसार सागर में रुलता रहता है।

(नोट- इनमें से कोई तीन)

(j) **भवनपति देवों की आगति समझाकर लिखिए।**

उ आगति 111 की(101 सन्नी मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन सब के पर्याप्ता)

(k) **''नास्तं................लोके।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति।

नाम्भोधरोदर-निरूद्ध-महाप्रभावः, सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र! लोके।।

भावार्थ-इसमें सूर्य व भगवान की तुलना करते हुए बताया है कि सूर्य शाम को अस्त हो जाता है, उसे बादल ढक लेते हैं, राहू ग्रस लेता है, किंतु आपका महातेज इन दोषों से रहित है तथा तीनों लोक को एक साथ प्रकाशित करने वाला है।

(l) **''गम्भीर.................प्रवादी।।'' रिक्त स्थान को पूर्ण कर अर्थ लिखिए।**

उ गंभीर-तार-रवपूरित-दिग्विभाग- स्त्रैलोक्यलोक- शुभसंगम - भूतिदक्षः।

सद्धर्मराज - जयघोषण - घोषक : सन्, खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।

भावार्थ- इस श्लोक में पंचम 'देव दुन्दुभि' नामक प्रातिहार्य का वर्णन है। यह दुन्दुभि भगवान के धर्मराज होने की सर्वत्र घोषणा करती है।

(m) **''किं शर्वरीषु.................कियज्जलधरै र्जलभार नम्रैः।।'' का भावार्थ लिखिए।**

उ भावार्थ- जब धान्य पक जाता है तब वहाँ बादलों के बरसने से कोई लाभ नहीं है, उसी प्रकार जहाँ आपके मुख रूपी चंद्रमा से अज्ञानान्धकार नष्ट हो चुका हो वहाँ रात्रि में चंद्रमा की चाँदनी (शीतलता) तथा दिन में सूर्य के प्रकाश (ताप) से क्या प्रयोजन ?

(n) **''तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्तिहराय.................भवोदधि-शोषणाय।'' का भावार्थ लिखिए।**

उ भावार्थ- इसमें भगवान को त्रिभुवन की पीड़ा हरने वाला, पृथ्वी तल का निर्मल भूषण, जगत् का परमेश्वर तथा संसार समुद्र को सुखाने वाला बताकर नमस्कार किया गया है।